अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

वर्ष : 44, अंक : 9, 16-31 दिसंबर 2020

संकट में है अन्नदाता

सर्व सेवा संघ
(अखिल भारत सर्वोदय मंडल)
द्वारा प्रकाशित
अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र
सर्वोदय जगत
सत्य, अहिंसा एवं सर्वोदय-सम्पूर्ण क्रांति का संदेश वाहक
वर्ष : 44, अंक : 09, 16-31 दिसंबर 2020

अध्यक्ष
चंदन पाल

संपादक
बिमल कुमार
सहसंपादक
प्रेम प्रकाश
09453219994

संपादक मंडल
डॉ. रामजी सिंह **अरविन्द अंजुम**
प्रो. सोमनाथ रोडे **अशोक मोती**

संपादकीय कार्यालय
सर्व सेवा संघ
राजघाट, वाराणसी-221001 (उ.प्र.)
फोन : 0542-2440-385/223
ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com
Website : sssprakashan.com

शुल्क

एक प्रति	:	05 रुपये
वार्षिक	:	100 रुपये
आजीवन	:	1000 रुपये

खाता संख्या : 383502010004310
IFSC Code : UBIN0538353
Union Bank of India
Rajghat, Varanasi

इस अंक में...

1. संपादकीय... 2
2. संसद में पारित कृषि विधेयक... 3
3. नये कृषि कानूनों के विधिक परीक्षण... 6
4. किसान आंदोलन - हमारा आंदोलन... 8
5. प्रेरक प्रसंग... 9
6. मीडिया की गलत रिपोर्टिंग पर एडिटर्स... 9
7. अतीत के किसान आंदोलनों से... 10
8. गांधी जागा... 11
9. मीडिया और सरकार की छाती पर... 12
10. शहद में मिलावट... 13
11. सादगी सुंदर है, गरीबी सुंदर नहीं... 14
12. अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार दिवस पर... 16
13. अच्छे नहीं हैं ये दाग... 17
14. गतिविधियां एवं समाचार... 18
15. तीन कविताएं... 20

संपादकीय

भारत भाग्य विधाता की जय हो

किसान आंदोलन अब एक राष्ट्रीय आंदोलन बन गया है। किसान आंदोलन ने उन शक्तियों एवं संस्थाओं को चिन्हित कर दिया है, जो एक व्यापक शोषणकारी व अन्यायकारी व्यवस्था को मजबूत कर रहे हैं। मोटे तौर पर ये वित्तीय पूंजीवाद एवं उसकी वैश्विक स्तर की संस्थाएं हैं। ये वैश्विक वित्तीय पूंजीवादी संस्थाएं विश्व भर में प्राकृतिक संसाधनों एवं स्रोतों (जैसे जल-जंगल-जमीन-खनिज-पशुधन-समुद्री स्रोत-पर्वतीय स्रोत आदि) पर निरंतर कब्जा बढ़ा रही हैं। भारत में लाये गये तीनों कृषि कानून इसी व्यापक प्रक्रिया का हिस्सा हैं। इन तीनों कानूनों को तो खत्म होना ही चाहिए, पर साथ में उस पूरी प्रक्रिया पर भी प्रभावी अंकुश लग जाना चाहिए, जिसके माध्यम से वैश्विक वित्तीय पूंजी प्राकृतिक संसाधनों और स्रोतों पर अपना नियंत्रण बढ़ा रही है। इसी कारण हमारा मानना है कि आज भारत के किसान केवल किसानों के लिए संघर्ष नहीं कर रहे हैं, वे भारत के भविष्य, भारत के भाग्य का निर्माण करने के लिए लड़ रहे हैं—वे भारत के वास्तविक भाग्य विधाता बन रहे हैं।

अभी के उनके तात्कालिक आंदोलन और सरकार के साथ उनकी वार्ता के जो भी परिणाम आये, देश भर में एक नयी चेतना का संचार हुआ है, नयी ऊर्जा का विस्फोट हुआ है। सरकार ने सोचा था कि कोरोना-काल में वे जो भी जन-विरोधी कानून लाते जायेंगे, लोगों के पास उनका विरोध करने का अवसर नहीं होगा। किसान आंदोलन ने उनके इस भ्रम को भी तोड़ दिया है। अब जरूरत है कि किसान आंदोलन ने जिन बुनियादी मुद्दों को लोक चेतना में संचारित किया है, उनको और अधिक गहराई व विस्तार से विमर्श में लाया जाये और एक लंबे समय तक लोक संवाद व लोक संघर्ष की रणनीति को बनाया जाये। वित्तीय पूंजी का शिकंजा किस प्रकार कसता जा रहा है, इसका पूरा खुलासा हो और वे सभी वर्ग व समूह, जो इस वित्तीय पूंजी के बढ़ते शिकंजे के कारण बेकारी, बदहाली एवं बेदखली के शिकार हो रहे हैं, वे सब एक व्यापक मंच के अंदर आकर संयुक्त आंदोलन की मुहिम तेज करें। इनमें प्राकृतिक स्रोतों पर आधारित परम्परागत समुदाय तो हैं ही, उनके अलावा छोटे कारोबारी, छोटे उद्यमी, श्रमिक, आदिवासी आदि सभी शामिल हैं। एक विस्तृत विश्लेषण पत्र के साथ, जनता का एक संकल्प पत्र तैयार करने की जरूरत है। देश भर में इस संकल्प पत्र पर लोगों के हस्ताक्षर लेकर उसे जनादेश के रूप में लागू कराने का संघर्ष तीव्र किया जाना चाहिए। देश भर में लोक स्तर पर संयुक्त जनसंघर्ष समितियों का निर्माण कर एक व्यापक लोक संगठन का ढांचा भी खड़ा किया जा सकता है।

यह संकट कितना गहरा है, यह इसी बात से समझा जा सकता है कि कृषि व्यवसाय निगमों (agri-business corporations) एवं भूमि सट्टेबाजों के हाथ में खेत तेजी से वित्तीय पूंजी के माध्यम से चले जायेंगे। खेती का तेजी से पूंजीवादीकरण एवं केन्द्रीकरण होगा। पश्चिमी देशों के संस्थागत वित्तीय निवेशक दुनिया के कई देशों में प्राइवेट इक्विटी तथा पेंशन फंड का निवेश करके फार्मलैंड पर इनका नियंत्रण बढ़ा रहे हैं। वैश्विक स्तर पर हम खाद्य सुरक्षा एवं खाद्य सम्प्रभुता को खत्म कर रहे हैं। भारत में इसकी शुरुआत कान्ट्रैक्ट फार्मिंग से होगी। अगला कदम यह होगा कि किसान अपनी भूमि इन कृषि व्यवसाय निगमों एवं वित्तीय संस्थाओं को गिरवी रख सकेंगे। वर्तमान में अनुपस्थित भू-स्वामी (absent landowners) सबसे पहले अपनी भूमि इनके यहां गिरवी रखेंगे। फिर कारपोरेट जगत को यह छूट दी जायेगी कि वह भूमि खरीद सके। आप अनुमान लगायें, कारपोरेट जगत एक बड़ी राशि का लालच देकर किसान की जमीन पहले गिरवी रखेगा, फिर खरीद लेगा। आने वाले समय में आपको यह भी पता लगेगा कि कारपोरेट फार्मिंग पर सीलिंग कानून लागू नहीं होगा। जैसे कारपोरेट कृषि व्यवसायी पर आवश्यक वस्तु ऐक्ट (Essential Commondities Act) लागू नहीं होगा।

ये कानून कृषि पर्यावरण को भी नष्ट करने का माध्यम बन जायेंगे। क्योंकि स्थानीय परम्परागत व्यवस्थाएं केवल उत्पाद बढ़ाने पर जोर नहीं देती थीं, बल्कि स्थानीय खाद्य सुरक्षा, स्थानीय स्तर पर कैलोरी एवं पोषण की संपूर्ण आपूर्ति, अनेकानेक प्रकार के न्यूट्रीशन वाले कृषि उत्पाद, जलस्तर का स्थायित्व, वातावरण के अनुकूल मृदा संरक्षण तथा कीटाणु आदि से बचाव के साथ-साथ पशुधन व पशु आहार का सम्यक संतुलन बनाये रखती रही हैं। यह एक बड़ी लड़ाई की शुरुआत है। इसके विस्तार में जुटना ही युगधर्म है।

–बिमल कुमार

संसद में पारित कृषि विधेयक

❑ जया मेहता

जया मेहता अर्थशास्त्री हैं। वे मूलतः इंदौर की रहने वाली हैं। जनहित के समसामयिक सवालों, विशेषकर आर्थिक क्षेत्र में उनके धारदार विश्लेषण विभिन्न मीडिया समूहों में निरंतर प्रकाशित/प्रसारित होते रहते हैं। प्रस्तुत है नये कृषि कानूनों पर उनका विश्लेषण। **-सं.**

1. आवश्यक वस्तु (संशोधन) अधिनियम, 2020

आवश्यक वस्तु अधिनियम 1955 में भारत में लागू किया गया था। तब इस नियम को लागू करने का उद्देश्य उपभोक्ताओं को आवश्यक वस्तुओं की उपलब्धता उचित दाम पर सुनिश्चित करवाना था। अतः इस कानून के अनुसार आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन, मूल्य और वितरण सरकार के नियंत्रण में होगा, जिससे उपभोक्ताओं को बेईमान व्यापारियों से बचाया जा सके। आवश्यक वस्तुओं की सूची में खाद्य पदार्थ, उर्वरक, औषधियां, पेट्रोलियम, जूट आदि शामिल थे।

23 सितम्बर 2020 को पारित अधिनियम में संशोधन के बाद बने इस कानून में अनाज, दलहन, तिलहन, खाद्य तेल, प्याज और आलू को आवश्यक वस्तुओं की सूची से हटा दिया गया है। इस प्रकार इन वस्तुओं पर जमाखोरी एवं कालाबाज़ारी को सीमित करने और इसे एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने जैसे प्रतिबंध हटा दिए गए हैं। अब इन वस्तुओं के व्यापार के लिए लाइसेंस लेना जरूरी नहीं होगा। हालाँकि इस अधिनियम में प्रावधान है कि युद्ध, अकाल या असाधारण मूल्य वृद्धि जैसी आकस्मिक स्थितियों में प्रतिबंधों को फिर से लागू किया जा सकता है लेकिन जिस समय इस प्रतिबंध को हटाया गया है, क्या यह आपातकालीन समय नहीं है? आज कोविड-19 के दौर में करोड़ों लोग बेरोजगार हो गए हैं। यह ऐसा समय है, जब लोग अपनी मौलिक जरूरतों को पूरा करने लायक भी नहीं कमा पा रहे। इस अभूतपूर्व कठिनाई के दौर में लोकतान्त्रिक राज्य की जिम्मेदारी है कि वह लोगों को उनकी बुनियादी जरूरतों का सामान सस्ती कीमत पर उपलब्ध करवाए। जीने के लिए बुनियादी जरूरतों में खाद्य सामग्री सबसे पहले क्रम पर आती है, लेकिन कानून में इस तरह का बदलाव करके जरूरतमंदों को खाद्य सामग्री उपलब्ध करवाने के बजाय अधिक मूल्य पर उपज बेचने जैसी बेहतर संभावनाओं एवं भंडारण की मात्रा पर प्रतिबंध हटाना बेहद शर्मनाक सोच है। इस कानून से जमाखोरों को वैधता मिल जाती है।

इस संशोधन को उचित ठहराते हुए सरकार तर्क देती है कि किसान अपनी कृषि उपज को एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में बेचकर बेहतर दाम प्राप्त कर सकेंगे। इससे किसानों को व्यापार एवं सौदेबाजी के लिए बड़ा बाजार मुहैया होगा और उनकी व्यापारिक शक्ति बढ़ेगी। इसी प्रकार खाद्य पदार्थों के भंडारण की मात्रा पर प्रतिबंध हटा देने से भंडारण क्षेत्र की क्षमता बढ़ाई जा सकती है और इसमें निजी निवेशकों को भी आमंत्रित किया जा सकेगा।

देश में किसान परिवारों की सामाजिक-आर्थिक हैसियत को देखते हुए ऐसे किसान गिने-चुने ही हैं, जो अपना कृषि उत्पाद मुनाफे की तलाश में दूर-दराज के इलाकों तक भेज पाते हों या जिनके पास इतने बड़े गोदाम हों, जहाँ वे अपनी फसल का लम्बे समय तक भंडारण कर सकें। ज़ाहिर है, इस संशोधन वाले कानून से केवल बड़े व्यापारियों और कंपनियों को ही फायदा होगा। जो खाद्य पदार्थों के बाजारों में गहराई तक पैठ रखते हैं और ये अपने मुनाफे के लिए खाद्य पदार्थों की जमाखोरी करके संसाधनविहीन बहुत सारे गरीब किसानों का नुकसान ही करेंगे।

2. कृषि उपज व्यापार एवं वाणिज्य (संवर्धन एवं सुविधा) अधिनियम, 2020

1970 के दशक में राज्य सरकारों ने किसानों के शोषण को रोकने और उनकी उपज का उचित मूल्य सुनिश्चित करने के लिए 'कृषि उपज विपणन समिति अधिनियम' (एपीएमसी ऐक्ट) लागू किया था। इस अधिनियम के तहत यह तय किया कि किसानों की उपज अनिवार्य रूप से केवल सरकारी मंडियों के परिसर में खुली नीलामी के माध्यम से ही बेची जाएगी। मंडी कमेटी खरीददारों, कमीशन एजेंटों और निजी व्यापारियों को लाइसेंस प्रदान कर व्यापार को नियंत्रित करती है। मंडी परिसर में कृषि उत्पादों के व्यापार की सुविधा प्रदान की जाती है; जैसे उपज की ग्रेडिंग, मापतौल और नीलामी इत्यादि। सरकारी मंडियों या लाइसेंसधारी निजी मंडियों में होने वाले लेन-देन पर मंडी कमेटी टैक्स लगाती है। भारतीय खाद्य निगम (फूड कॉर्पोरेशन ऑफ़ इंडिया-एफसीआई) द्वारा न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) पर कृषि उपज की खरीदारी सरकारी मंडियों के परिसर में ही होती है।

कृषि उत्पाद व्यापार एवं वाणिज्य (संवर्धन एवं सुविधा) अधिनियम 2020 के अनुसार कृषि व्यापार की यह अनिवार्यता कि मंडी परिसर में ही उपज बेचना जरूरी है, खतम कर दी गई। नए कानून के मुताबिक किसान राज्य सरकार द्वारा अधिसूचित मंडियों के बाहर अपनी कृषि उपज बेच सकता है। यह कानून कृषि उपज की खरीद-बिक्री के लिए नए व्यापार क्षेत्रों की बात करता है, जैसे किसान का खेत, फैक्ट्री का परिसर, वेयर हॉउस का अहाता इत्यादि। इन व्यापार क्षेत्रों में इलेक्ट्रॉनिक ट्रेडिंग प्लेटफॉर्म की भी बात की जा रही है। इससे किसानों को यह सुविधा मिलेगी कि वे कृषि उपज को स्थानीय बाजार के अलावा राज्य के अंदर और बाहर दूसरे बाज़ारों में भी बेच सकते हैं। इसके अलावा, इन नए व्यापार क्षेत्रों में लेन-देन पर राज्य अधिकारी किसी भी तरह का टैक्स नहीं लगा पाएंगे। यह कानून सरकारी मंडियों को

बंद नहीं करता, बल्कि उनके एकाधिकार को समाप्त करता है, सरकार का दावा है कि इससे कृषि उपज का व्यापार बढ़ेगा।

इस नियम का विरोध इसलिए भी किया जाना जरूरी है, क्योंकि यह कानून संविधान में निहित राज्य सरकारों के अधिकार की अवमानना करता है। सत्तर के दशक में कृषि उपज विपणन समिति अधिनियम (एपीएमसी ऐक्ट) को विधानसभाओं ने बनाया था और अब इस नए कानून से कृषि उपज विपणन समिति अधिनियम (एपीएमसी एक्ट) निरस्त हो गए हैं और केंद्र सरकार ने इन्हें निरस्त करते समय राज्य सरकार से बात करना भी जरूरी नहीं समझा। केंद्र सरकार राज्य सरकारों से सलाह लिए बिना उन्हें कैसे खत्म कर सकती है? 2003 में जब केंद्र में अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में एनडीए सरकार थी तो यह निर्णय लिया गया था कि निजी कंपनियों को मंडी परिसर के बाहर कृषि उपज खरीदने की अनुमति दी जानी चाहिए। लेकिन इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए केंद्र सरकार ने केवल एक मॉडल अधिनियम तैयार किया और उसके मुताबिक राज्य सरकारों को मंडी अधिनियम में संशोधन करने की सलाह दी। इसके विपरीत मोदी सरकार की एनडीए गवर्मेंट ने हर क्षेत्र में, हर मामले में संवैधानिक उल्लंघन करने का रिकॉर्ड बनाया है।

राज्य सरकारों के अधिकारों के हनन से भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण मुद्दा यह है कि किसान खुद इस कानून को किसान विरोधी और कॉरपोरेट समर्थक मानते हैं। वे जानते और मानते हैं कि इन सुधारों से उन्हें अपनी उपज के लिए उच्च मूल्य प्राप्त करने का अवसर नहीं मिलेगा। इसके बजाय इन सुधारों से कॉरपोरेट्स को कृषि उपज की सीधी खरीद की सुविधा होगी, जिस पर किसी हद तक कृषि उपज विपणन समिति अधिनियम (एपीएमसी ऐक्ट) होने की वजह से राज्य सरकारों का कुछ तो नियंत्रण था।

कॉरपोरेट घरानों और बड़े व्यापारियों को खरीद-फरोख्त की खुली छूट मिल जाने से वे उन जगहों से ही किसानों की उपज खरीदेंगे, जहाँ लेन-देन के लिए कोई शुल्क या टैक्स नहीं लिया जाएगा। शुरुआत में कंपनियों द्वारा किसानों को लुभाने के लिए कुछ आकर्षक मूल्य के प्रस्ताव दिए जाएंगे लेकिन बाद में फसल के दामों पर पूरा नियंत्रण कंपनियों और व्यापारियों का हो जायेगा। इस नए कानून का यह दुष्परिणाम होगा कि सरकार द्वारा अधिसूचित मंडियों में लेन-देन कमतर होने से व्यापार कम होने लगेगा और अंततः धीरे-धीरे सरकारी मंडियों का विघटन होता जाएगा और साथ ही साथ एफसीआई द्वारा खरीद भी खत्म हो जाएगी, जिसका परिणाम यह होगा कि कृषि मंडियों पर सरकारी एकाधिकार के बजाय कॉरपोरेट का एकाधिकार होगा और किसान निजी कंपनियों और बहुराष्ट्रीय कंपनियों की दया पर निर्भर हो जाएंगे। कृषि उपज के अंतरराष्ट्रीय बाजारों में आते उतार-चढ़ाव और अनुचित व्यापार के परिणामों से देश के किसानों को बचाने के लिए कोई बफर जोन नहीं होगा।

हालाँकि मोदी सरकार बार-बार आश्वासन दे रही है कि एफसीआई द्वारा कृषि उपज की खरीद जारी रहेगी और किसानों को न्यूनतम समर्थन मूल्य मिलेगा, लेकिन किसानों को इस आश्वासन पर जरा भी भरोसा नहीं है। इस सरकार का रिकार्ड है कि पहले भी न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) के बारे में कई वादे किए गए थे, जिन्हें कभी पूरा नहीं किया गया। 2014 के अपने चुनावी घोषणापत्र में भारतीय जनता पार्टी ने वादा किया था कि वह स्वामीनाथन आयोग की रिपोर्ट में दिए गए सुझावों को लागू करेगी। इस घोषणा पत्र में किसानों को आयोग द्वारा प्रस्तावित न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) देने का वादा किया गया था। स्वामीनाथन कमीशन के अनुसार उत्पादन के न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) में उत्पादन की सारी लागतों को शामिल किया जाये, जैसे कि श्रम की लागत, जमीन की परोक्ष-अपरोक्ष लागत, मशीन की लागत इत्यादि। फिर फसल का न्यूनतम समर्थन मूल्य तय करते वक्त इस कुल लागत पर पचास प्रतिशत कि बढ़ोत्तरी की जाये।

लेकिन जब चुनाव जीत लिया और सरकार बन गई तब 2015 में मोदी सरकार ने सर्वोच्च अदालत में एक हलफनामा दायर किया। इस हलफनामे में सरकार द्वारा कहा गया कि किसानों को आयोग द्वारा प्रस्तावित न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) दी ही नहीं जा सकती, क्योंकि इससे पूरे बाजार में विकृति आ जाएगी। इसके बाद, कृषि मंत्री ने कहा कि उन्होंने आयोग द्वारा प्रस्तावित न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) देने के लिए कभी कोई वादा नहीं किया था। 2018-19 में, वित्त मंत्री ने एक बयान दिया कि वे स्वामीनाथन आयोग की रिपोर्ट के सुझावों को पहले ही लागू कर चुके हैं।

संक्षेप में, सरकार ने इस संबंध में सभी प्रकार के गैरजिम्मेदाराना बयान दिए हैं और यह अंतिम कदम वास्तव में किसानों को किसी भी प्रकार के समर्थन मूल्य देने की जिम्मेदारी से बचने की कोशिश है। आखिरकार, इस तरह से सरकार द्वारा अपने आप को हर तरह की जिम्मेदारी से मुक्त कर लेना शायद प्रधानमंत्री द्वारा दिए गए नारे 'आत्म निर्भर' का अनुसरण है।

3. कीमत आश्वासन एवं कृषि सेवाओं पर करार (सशक्तीकरण एवं संरक्षण) अधिनियम, 2020

इस अधिनियम का उद्देश्य अनुबंध या ठेका खेती के लिए राष्ट्रीय स्तर पर एक संस्थागत ढांचा तैयार करना है। ठेका या अनुबंध खेती में वास्तविक उत्पादन होने से पहले किसान और खरीदार के बीच उपज की गुणवत्ता, उत्पादन की मात्रा एवं मूल्य के सम्बंध में अनुबंध किया जाता है। बाद में यदि किसान और खरीदार के बीच में कोई विवाद हो तो इस कानून में विवाद सुलझाने के प्रावधान शामिल हैं। सबसे पहले तो एक समाधान बोर्ड बनाया जाये, जो विवाद को सुलझाने का पहला प्रयास हो। यदि समाधान बोर्ड विवाद न सुलझा सके तो आगे इस विवाद को सबडिवीजनल अधिकारी और अंत में अपील के लिए कलेक्टर के सामने ले जाया जा सकता है लेकिन विवाद को लेकर अदालत में जाने का प्रावधान नहीं है।

विधेयक विवाद सुलझाने की बात तो करता है, लेकिन इसमें खरीद के अनुबंधित मूल्य किस आधार पर तय होंगे, इसका कोई संकेत नहीं है। एक बड़ी कम्पनी तरह-तरह के दबाव बनाकर छोटे किसानों से कम से कम मूल्य पर अनुबंध कर सकती है। चूँकि कानून में न्यूनतम समर्थन मूल्य को आधार नहीं बनाते हुए आस-पास की सरकारी या निजी मंडियों के समतुल्य मूल्य देने की बात की गयी है, इसलिए जरूरी नहीं कि किसान को न्यूनतम समर्थन मूल्य हासिल हो। कानून की भाषा की पेचीदगियों से किसान को गफलत में डालकर कंपनियां अपने मुनाफे को सुनिश्चित करने वाला मूल्य अनुबंध में शामिल करवाएंगी।

नवउदारवादी नीतियों के चलते पंजाब और हरियाणा में कई किसानों ने पेप्सीको और अन्य बड़ी कम्पनियों के साथ अनुबंध या ठेका खेती की है। ठेका खेती करने के बाद अनेक किसानों के अनुभव कड़वे रहे हैं। किसान बहुत सावधानीपूर्वक ठेका खेती के अनुबंधों के अनुसार काम करता है और कंपनियां खेत में खड़ी उपज को लेने से इंकार कर देती हैं। अनेक बार कम्पनियों द्वारा किसानों को समय पर भुगतान नहीं किया जाता है। अनुबंध होने के बावजूद किसान कंपनियों से लड़ने में सक्षम नहीं होता है, क्योंकि अधिकांश किसानों के संसाधन कंपनियों की तुलना में बहुत कम होते हैं। यदि विवाद हो तो उसे इस कानून के तहत सुलझाने की प्रक्रिया तो बताई गई है, लेकिन इससे इस बात की कोई गारंटी नहीं कि किसान को न्याय मिलेगा ही। कंपनियों के पास वकीलों की पूरी फौज होती है, जबकि किसान कोर्ट-कचहरी के घुमावदार, पेचीदा चक्करों में बहुत लम्बे समय तक उलझा नहीं रह सकता। ठेका खेती को एक संस्थागत वैधानिक रूप देने से केवल वही किसान प्रभावित नहीं होंगे, जो कॉन्ट्रेक्ट खेती कर रहे हैं, बल्कि ठेका खेती खेती के समूचे परिदृश्य को बदल देगी।

हाल में गुजरात में पेप्सीको कम्पनी ने कुछ ऐसे आलू उत्पादक किसानों से मुआवज़े की मांग की, जिन्होंने पेप्सीको के साथ खेती का कोई अनुबंध नहीं किया था। पेप्सीको का इन किसानों पर यह आरोप था कि बिना अनुबंध किये यह किसान आलू की वही किस्म उगा रहे थे, जो पेप्सीको कम्पनी अनुबंध करके किसानों से उगवाती है और जिससे ले'ज़ ब्रांड के चिप्स बनते हैं। इसका मतलब यह हुआ कि किसी खास उत्पाद के लिए अगर कंपनियां किसानों के साथ ठेका खेती का अनुबंध करती हैं तो वे उस फसल के बीज पर भी अपना कॉपीराइट का अधिकार जताती हैं, जो बीज उन्होंने किसान को दिया होता है। यानि जो किसान कंपनियों के साथ खेती का अनुबंध नहीं करेंगे, वे कम्पनी के बीज की किस्म को उगा भी नहीं सकेंगे।

इससे भी ज्यादा अहम बात यह है कि भारत की खेती के क्षेत्र में बहुराष्ट्रीय कंपनियों के प्रवेश और निर्यात बाज़ारों पर अधिक निर्भरता देश की खेती में फसलों के चयन को बदल देगी। इससे हमारी खेती की पूरी व्यवस्था को बुरी तरह क्षति पहुंचेगी। जिस तरह गुलामी के दौर में हमारे किसान अपनी ज़मीन पर वह फसल उगाने के लिए स्वतंत्र नहीं थे, जो वे उगाना चाहते थे या जो उनकी जरूरत थी, बल्कि उन्हें अंग्रेजों के डर से वह उगाना होता था, जिसमें अंग्रेजों को फायदा था और जो अंग्रेजों की जरूरत थी। सन 1917 में चम्पारण में गांधीजी ने अंग्रेजों द्वारा करवाई जा रही नील की जबरिया खेती के खिलाफ अपना पहला सत्याग्रह किया था। तब में और अब में फर्क इतना ही है कि अब यही काम डंडे, बूटों और हंटर के बजाए ऊंची कीमत के लालच और मुनाफे की राजनीति के द्वारा किया जा रहा है और हमारे किसान फिर से अपनी जरूरत की फसल चुनने के अधिकार से वंचित किये जा रहे हैं।

साम्राज्यवादी देशों का कृषि व्यापार में यह रवैया अनेक दशकों से रहा है। उष्णकटिबंधीय देशों यानि गर्म जलवायु वाले देशों में विभिन्न प्रकार के फलों, सब्जियों, फूल, मसाले और ऐसे अनेक कृषि उत्पाद उगाये जा सकते हैं, जो यूरोप और अमेरिका की ठंडी और मध्यम या समशीतोष्ण जलवायु वाले देशों में नहीं उगाए जा सकते हैं। साम्राज्यवादी व्यवस्था यह चाहती है कि उष्णकटिबंधीय देश अपनी खेती में उन कृषि उत्पादों की पैदावार करें, जिनकी जरूरत विदेशों में है और इसके बदले में वे विकसित देशों में भारी मात्रा में उत्पादित होने वाले खाद्यान्न का आयात कर लें। बहुराष्ट्रीय कंपनियां और आयात-निर्यात बाजार किसानों को खाद्यान्न उत्पादन को छोड़ देने और अपनी खेती को विकसित देशों के मुताबिक ढालने के लिए बहुत से लुभावने और आकर्षक प्रस्ताव दे सकते हैं। अफ्रीका में बहुराष्ट्रीय कंपनियों और साम्राज्यवादी देशों ने ऐसा ही किया है और वहाँ की बड़ी आबादी की खाद्य सुरक्षा गंभीर खतरे में पड़ गई है। मौजूदा बदलावों को देखते हुए लगता है कि भारत भी अफ्रीका के रास्ते पर ही आगे बढ़ेगा और ऐसा करने में भारतीय राज्य का सक्रिय समर्थन है।

उम्मीद जगाते संघर्ष

यह कानून उन बड़े बदलावों का एक हिस्सा है, जो भारत की अर्थव्यवस्था को साम्राज्यवादी देशों की गुलाम अर्थव्यवस्था बनाने के लिए किये जा रहे हैं। हम नवउदारवाद के दौर में अपनी ही चुनी गई सरकारों द्वारा अपने ही देश के सार्वजानिक उद्यमों को निजी हाथों में औने-पौने दामों पर निजी कंपनियों को बेचा जाता देख रहे हैं। हाल ही में अनेक नए श्रम कानूनों को चार कोड के भीतर समेटकर उन्हें इस तरह बदल दिया गया है कि मालिकों को मजदूरों और कर्मचारियों के शोषण की और ज्यादा कानूनी आज़ादी हासिल हो जाये। यह तीन कृषि कानून भी उन व्यापक बदलावों का ही हिस्सा हैं, जहाँ जनता द्वारा चुनी गई सरकार देशी-विदेशी महाकाय कंपनियों के मुनाफे को बढ़ाने के लिए अपने मजदूरों और किसानों की मेहनत को उनकी आजीविका को और उनके जीवन को गिरवी रख रही है। किसानों का पिछले कई दिनों से दिल्ली घेराव का आंदोलन इन नीतियों के प्रतिरोध की एक पुरजोर कोशिश है। आने वाले वक्त में प्रतिरोध की ऐसी बहुत सी जोरदार कोशिशें उभरेंगी और शोषितों के अलग-अलग तबकों का सामूहिक प्रतिरोध एक दिन शोषण की व्यवस्था को खत्म कर एक नई व्यवस्था कायम करेगा। ❑

नए कृषि कानूनों के विधिक परीक्षण की आवश्यकता है

❑ विजय शंकर सिंह

अगर आप को लगता है कि नये कृषि कानून केवल किसानों का ही अहित करेंगे तो यह आप का भ्रम है। कृषि और किसानों के विषय पर नियमित अध्ययन और लेखन करने वाले पत्रकार, पी साईंनाथ ने द वायर में एक विस्तृत लेख लिख कर इन कानूनों में व्याप्त विधिक विरोधाभासों को उजागर किया है। अब कृषि कानून में जो कानूनी विरोधाभास है, उसकी चर्चा करते हैं।

'No suit, prosecution or other legal proceedings shall lie against the Central Government or the State Government, or any officer of the Central Government or the State Government or any other person in respect of anything which is in good faith done or intended to be done under this Act or of any rules or orders made thereunder.'

'कोई भी वाद या अभियोजन या अन्य कोई भी विधिक कार्यवाही, केंद्रीय सरकार या राज्य सरकार या केंद्रीय सरकार के किसी अधिकारी या राज्य सरकार के किसी अधिकारी या किसी भी अन्य व्यक्ति के विरुद्ध, जिसने कोई भी कार्य यदि बद इरादे के उद्देश्य से नहीं किया है, उसके विरुद्ध नहीं की जा सकेगी।'

यह तीन कृषि कानूनों में से वह एक महत्वपूर्ण कानून है, जो निजी मंडी या किसी को भी, जो पैन कार्ड धारक है, कृषि उत्पाद खरीदने की शक्ति और अधिकार प्रदान करता है।

हालांकि, देश में और भी ऐसे कानून हैं जो, सरकारी अफसरों को, कर्तव्य पालन के दौरान उनके द्वारा किये गए कतिपय कार्यों को, जो नेकनीयती से किये गए हैं, के संबंध में अभियोजन के खिलाफ रक्षा कवच के रूप में बनाये गए हैं। पर यह कानून, इस प्रकार के संरक्षण प्रदान करने वाले कानूनों में सबसे अलग प्रकृति का है। लोकसेवकों को ही नहीं, ऐसा संरक्षण इन कानूनों के इतर, उन सबको दिया जाना चाहिए, जो कोई भी कार्य बद इरादे या बिना मेंसेरिया के करते हैं। अपराध का मूल ही मेंसेरिया से शुरू होता है। लेकिन वे जो कर रहे हैं, वह नेक इरादे से ही कर रहे हैं, यह एक अस्पष्ट और धुंधली व्याख्या है। वह कर क्या रहे हैं, यह भी नेक और बद इरादे की तरह, उससे कम महत्वपूर्ण बात नहीं है।

अब इसी अधिनियम की धारा 15 को देखें—

'No civil court shall have jurisdiction to entertain any suit or proceedings in respect of any matter, the cognizance of which can be taken and disposed of by any authority empowered by or under this Act or the rules made thereunder.'

'इस अधिनियम के अंतर्गत या इस अधिनियम के अंतर्गत बने किसी भी नियमावली के सम्बंध में, किसी भी सिविल यानी दीवानी न्यायालय को कोई भी वाद सुनने या संज्ञान लेने या अन्य किसी भी प्रकार की सुनवाई करने का अधिकार नही होगा।'

अब सवाल उठता है कि धारा 13 के अंतर्गत केंद्र सरकार और राज्य सरकार तथा इनके अधिकारियों को इस प्रकार का विधिक संरक्षण तो दिया ही गया है, पर इन सबके साथ यह भी लिखा गया है कि कोई अन्य व्यक्ति, तो यह कोई अन्य व्यक्ति, जो न सरकार है और न ही लोकसेवक, तो वह कौन है, जिसे इस प्रकार का सुरक्षा कवच प्रदान किया गया है? कहीं यह सुरक्षा कवच बड़े या बहुत बड़े व्यापारियों, कम्पनियों और कॉरपोरेट के लिए तो नहीं बनाया गया है? यह प्रावधान, इसे उन कानूनों से अलग करता है, जहां लोकसेवकों को पहले से ही इस प्रकार की लीगल इम्युनिटी प्राप्त है।

धारा 15 का शुरुआती वाक्य कि 'कोई भी वाद, अभियोजन या विधिक कार्यवाही नही चलाई जा सकेगी' न केवल किसानों को ही ऐसा करने के लिए प्रतिबन्धित करता है, बल्कि इस प्रकार के सभी न्यायिक रास्ते बंद कर देता है, जो किसी भी व्यक्ति को विधिक विकल्प पाने का मौलिक अधिकार देते हैं। यह अधिकार किसी किसान संगठन को भी दीवानी न्यायालय में जाने के अधिकार से वंचित करता है।

हमारा संविधान हर नागरिक को न्यायालय जाने और वाद दायर करने का मौलिक अधिकार देता है, पर यह कानून उक्त अधिकार को प्रतिबंधित करता है। इस प्रकार का विधिक सुरक्षा कवच या लीगल इम्युनिटी अनेक संदेहों को जन्म देते हैं। यह 1975 - 77 के आपातकाल की भी याद दिलाता है, जब सरकार ने नागरिकों के मौलिक अधिकार निलंबित कर दिए थे। साथ ही यह एक स्वेच्छाचारी कार्यपालिका द्वारा न्यायपालिका के अधिकार क्षेत्र में दखलंदाजी भी है। इसे यदि लागू किया गया तो नौकरशाही का एक सामान्य अधिकारी भी न्यायपालिका के रूप में बदल जाएगा और वह जज भी होगा, अभियोजक भी और फैसले को लागू कराने वाला एक्जीक्यूटिव भी। यह संविधान की मूल अवधारणा चेक और बैलेंस तथा शक्ति पृथक्करण के विरुद्ध है। केवल किसानों से जुड़ा यह कानून एक सामान्य किसान को सर्वशक्ति सम्पन्न कॉरपोरेट के समक्ष एक भोज्य की तरह लाकर रख देता है।

इन कानूनों के इन विधिक विरोधाभासों पर दिल्ली बार काउंसिल ने भी अपनी आपत्ति दर्ज कराई है। दिल्ली बार काउंसिल ने प्रधानमंत्री को जो चिट्ठी भेजी है, उसमें यह लिखा है कि कैसे एक दीवानी प्रकृति का वाद, सुनवाई करने और निपटाने के लिए ऐसे प्रशासनिक तंत्र को दिया जा सकता है, जो न्यायपालिका का अंग ही न हो और वह सीधे कार्यपालिका के अंतर्गत आता हो?'

इस प्रशासनिक तंत्र में एसडीएम और जिलाधिकारी आते हैं। वे न्यायपालिका के अंग नही हैं अतः वे न्यायिक स्वतंत्रता की श्रेणी में भी नहीं आते हैं। कार्यपालिका का यह तबका अपनी कार्यप्रणाली में किस प्रकार सरकार के निर्णयों और इरादे से आज़ाद ख्याल है, यह किसी से छुपा नहीं है। ऐसे में वही फैसले आएंगे, जो सरकार के मनमाफिक होंगे। सरकार किस तरफ रहेगी, यह बताने की आवश्यकता नही है क्योंकि आज यह पूरा कानून और इस व्यापक जन आंदोलन को देख कर यह अनुमान आसानी से लगाया जा सकता है कि सरकार किसकी तरफ है, कॉरपोरेट या बड़ी कम्पनियों की तरफ या किसानों की तरफ!

बार काउंसिल का यह भी कहना है कि कार्यपालिका को न्यायपालिका की शक्तियां इस प्रकार हस्तांतरित कर देना एक खतरनाक संकेत और बड़ी भूल होगी। पत्र में अंग्रेजी के शब्द डैंजरस और ब्लंडर लिखे गए हैं। बार काउंसिल को यह भी आशंका है कि इसका असर वकालत के पेशे पर भी पड़ेगा। इससे दीवानी और जिला न्यायालयों के अधिकारों पर भी असर पड़ेगा।

अब इन्ही कृषि कानूनों के एक और कानून, द फार्मर्स (इम्पावरमेंट एंड प्रोटेक्शन) एग्रीमेंट ऑन प्राइस एश्योरेंश एंड फार्म सर्विसेज एक्ट 2020 को भी देखें। इस अधिनियम की धारा 18 भी बार बार नेक इरादे से किये गए कर्तव्यों की बात करती है। धारा 19 के अनुसार-

'No civil Court shall have jurisdiction to entertain any suit or proceedings in respect of any dispute which a Sub-Divisional Authority or the Appellate Authority is empowered by or under this Act to decide and no injunction shall be granted by any court or other authority [emphasis added] in respect of any action taken or to be taken in pursuance of any power conferred by or under this Act or any rules made thereunder.'

'इस कानून के या इस कानून के अनुसार बनाये गए नियमों के अंतर्गत, दी गयी शक्तियों और अधिकार से सम्पन्न किसी भी सब डिविजनल अधिकारी (एसडीएम) या अपीली अधिकारी द्वारा जारी किए गए किसी भी आदेश के बारे में कोई भी वाद किसी भी सिविल न्यायालय में न तो दायर किया जा सकेगा और न ही उसे (सिविल न्यायालय को) उक्त आदेश को स्थगित (स्टे) करने, या उस पर सुनवाई करने का क्षेत्राधिकार रहेगा।'

अब इसी के साथ संविधान का अनुच्छेद 19 भी पढ़ लें, जो हर नागरिक को अभिव्यक्ति और बोलने की आज़ादी, शांतिपूर्ण ढंग से एकत्र होने, सभा करने, जुलूस निकालने और संगठन बनाने का मौलिक अधिकार देता है। जबकि इस कानून की यह धारा 19, व्यक्ति के न्यायालय जाने तक के अधिकार को छीन ले रही है। इस अधिनियम की धारा 19 न केवल संविधान के अनुच्छेद 19 का उल्लंघन करती है, बल्कि यह संविधान के अनुच्छेद 32, जो हर नागरिक को न्यायालय में जाने और न्यायिक राहत पाने का मौलिक अधिकार देता है, को भी बाधित करती है। *संविधान का अनुच्छेद 32, संविधान के मूल ढांचे का एक भाग है और संविधान के मूल ढांचे के साथ छेड़छाड़ करने का अधिकार संसद को भी नहीं है।*

इन कानूनों में कानून बनाने की स्थापित परंपराओं का भी पालन नही किया गया है। यह कहना है सुप्रीम कोर्ट के जाने माने वकील व बीजेपी के नेता अश्विनी उपाध्याय का। अश्विनी उपाध्याय ने प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी को लिखे एक पत्र में कहा है कि 'कानून बनाने से पहले उसके ड्राफ्ट को पब्लिक डोमेन में डालना जरूरी है, तभी लोग सुझाव देंगे और फिर जो कानून बनेगा, उसमें खामियों की संभावना कम रहेगी। कृषि कानून के बारे में भी पहले ड्राफ्ट जनता के सामने नहीं आया। ऐसे में आपसे आग्रह है कि कोई भी नया कानून जब बनाना है तो ड्राफ्ट 60 दिनों पहले वेबसाइट पर डाला जाए, ताकि लोगों के सुझाव आ सकें।'

उपाध्याय जी का यह तर्क इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि आज जिन तीन कृषि कानूनों को सरकार बार बार किसान हितैषी बता रही है, उनके बारे में पहले ही दिन से किसान संगठन यह सवाल सरकार से पूछ रहे हैं कि यह कानून किस किसान या किसान संगठन की मांग या अनुरोध पर लाये गए हैं? यहीं यह सवाल भी उठता है कि क्या यह कानून विश्व बैंक और कॉरपोरेट को खेती सेक्टर में जबरन घुसा कर देश की कृषि आर्थिकी को बर्बाद करने के लिए नहीं लाये गए हैं?

एडवोकेट अश्विनी उपाध्याय अपने पत्र में कहते हैं कि 'कानून बनाने के लिए जो मौजूदा प्रक्रिया अपनाई गई है, वह संवैधानिक नहीं है। उन्होंने कहा कि मौजूदा प्रक्रिया में सेक्रेटरी कानून का ड्राफ्ट तैयार करता है, कैबिनेट उसे पास करती है और फिर जब सदन के सामने उसे पेश किया जाता है तो जनता को उस बारे में थोड़ी सी जानकारी मिल पाती है।'

लेकिन इन कानूनों के अध्यादेश भी लॉकडाउन के समय चुपके से लाये गए और जब इन्हें संसद में पेश किया गया, तो इन पर खुल कर बहस भी नहीं हुई। राज्यसभा में तो उपसभापति हरिवंश ने माइक म्यूट करा कर बेहद अलोकतांत्रिक और शर्मनाक तरीके से इन कानूनों को पारित करा दिया। हरिवंश का आचरण देश के संसदीय इतिहास में एक काले धब्बे की तरह याद रखा जाएगा।

अश्विनी उपाध्याय कुछ सुझाव भी देते हैं। वे लिखते हैं 'कानून बनाने की प्रक्रिया में सुधार की जरूरत है। राष्ट्रीय सुरक्षा को छोड़ अन्य विषय पर जब भी कानून बनाना हो तो दो महीने पहले उसका ड्राफ्ट सरकार के संबंधित मंत्रालय के वेबसाइट पर आना चाहिए, ताकि पब्लिक उसे देख सके। इससे ड्राफ्ट कानून पर चर्चा होगी और एक्सपर्ट की ओपीनियन आएगी। साथ ही उस कानून के बारे में सांसद और विधायक अपने इलाके में चर्चा करेंगे।

इस कानून की संवैधानिकता को सुप्रीम कोर्ट में चुनौती दी गयी है। अदालत का दृष्टिकोण एक अलग बिंदु है, पर किसानों को अपनी मांगों के साथ अपनी समस्याओं के बारे में शांतिपूर्ण ढंग से धरना, प्रदर्शन और आंदोलन करने का अधिकार है और वे अपनी बात मजबूती से रख भी रहे हैं। उनका सरकार के साथ संवाद भी जारी है। सरकार को चाहिए कि वह इन कानूनों को वापस ले और किसान संगठनों के साथ कृषि सुधार कार्यक्रम पर आगे बढ़े। ❑

किसान आंदोलन - हमारा आंदोलन

सर्व सेवा संघ (अखिल भारत सर्वोदय मंडल) तथा सामाजिक, राजनीतिक और परिवर्तनवादी संगठनों ने केंद्र सरकार की किसान विरोधी नीतियों के खिलाफ चल रहे देशव्यापी जनआंदोलन को तेज करने का निर्णय लिया है। केंद्र सरकार दिल्ली की सीमा पर चल रहे किसान आंदोलन को दबाने की कोशिश कर रही है। वह किसानों पर पानी के फव्वारों तथा आंसू गैस का उपयोग करके, राजमार्गों पर खाइयां खोदकर, जीवनघाती तरीकों और किसानों के नेताओं को स्थानबद्ध करके आंदोलन को दबाने की कोशिश कर रही है। केंद्र सरकार के, ब्रिटिश राजशाही को भी शर्मिंदा करने वाले दमन के बावजूद, लाखों किसान दिल्ली की सीमा पर अडिग बैठे हैं।

सर्व सेवा संघ सर्वोदय समाज के माध्यम से राष्ट्रीय स्तर पर इस आंदोलन को तेज करने की अपील कर रहा है। आइए, ये तीनों कानून क्यों इतने विवादास्पद हैं, इसे समझें-

1. आवश्यक वस्तु अधिनियम में परिवर्तन : 1955 में लागू किया गया यह कानून, सरकार को पूंजीपतियों और कंपनियों द्वारा खाद्यान्न के भंडारण और मूल्य निर्धारण को नियंत्रित करने का अधिकार देता है। केंद्र सरकार का नया कानून उक्त कानून को निष्प्रभावी बनाता है। यदि अतिभंडारण और कीमतों पर सभी प्रतिबंध हटा दिए जाते हैं, तो बड़े व्यापारिक संगठन, कंपनियां, पूंजीपति बड़े पैमाने पर स्टॉकपाइल्स बनाएंगे, बाजार में भोजन की कमी पैदा करेंगे और कीमतें बढ़ाएंगे।

2. अनुबंध खेती : यह अधिनियम किसी भी कृषि प्रसंस्करण कंपनी, पूंजीपति व्यापारी या कृषि कंपनी को किसानों के साथ कृषि समझौतों में प्रवेश करने की अनुमति देता है। इस अधिनियम के माध्यम से, छोटे किसानों के कृषि भूमि के स्वामित्व को समाप्त कर दिया जाएगा। इससे यह स्पष्ट है कि सरकार आजादी के बाद खत्म की गयी जमींदारी प्रथा को एक नए रूप में स्थापित करने जा रही है।

3. कृषि उपज मंडी समिति अधिनियम दरकिनार : उक्त व्यवस्था को सामान्य किसानों को लालची और शक्तिशाली व्यापारियों द्वारा लूटने से बचाने के लिए बनाया गया था। ये समितियाँ सरकार के खाद्य खरीद केंद्र भी बन गयीं। नये संशोधन से कृषि उपज खरीद बिक्री की यह व्यवस्था पूरी तरह ध्वस्त हो जाएगी। यह सच है कि व्यापारियों और दलालों ने कार्टेल बनाए, जिससे वे किसानों को लूटते थे, लेकिन इस भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाने के नाम पर सरकार किसानों से माल खरीदने के लिए बड़ी कृषि कंपनियों (कृषि उपज मंडी समिति को छोड़कर) को खुली अनुमति दे रही है।

इन कानूनों के परिणाम : हमें इन तीनों कानूनों को एक साथ देखना होगा। यह सब बड़े व्यापारियों और कंपनियों के लिए कृषि व्यवसाय पर पूर्ण नियंत्रण हासिल करना आसान बना देगा।

तीसरे मुद्दे को लेकर किसान ज्यादा गुस्से में हैं। उन्हें डर है कि अगर एपीएमसी का प्रचलित प्रभुत्व नष्ट हो जाता है, तो निजी ऑपरेटर / व्यापारी/कृषि दरों को नियंत्रित करेंगे। नए कानून में कहा गया है कि इन निजी कंपनियों को कोई शुल्क, उपकर या कर नहीं देना होगा। कुल मिलाकर नये कानून ने देश में निजी पूंजीपतियों के बाजार को बढ़ावा देने का एक रास्ता खोल दिया है।

सरकार का कहना है कि कृषि उत्पादों के लिए बहुत सारी कंपनियां आएंगी, किसानों से माल खरीदने के लिए उनके बीच प्रतिस्पर्धा होगी और इससे किसानों के माल को बेहतर कीमतें मिलेंगी। लेकिन वास्तव में बड़ी कंपनियां एक-दूसरे के साथ प्रतिस्पर्धा नहीं करती हैं, क्योंकि अगर ये कंपनियां कीमतों के लिए एक-दूसरे के साथ प्रतिस्पर्धा करती हैं, तो वे एक-दूसरे को नष्ट कर देंगी। कीमत के मामले में वे एक सहयोगात्मक तरीके से काम करेंगी। इसके लिए वे कार्टेल बनायेंगे और बाजार को आपस में बांट लेंगे।

विशालकाय विदेशी कृषि कंपनियां : ये कृषि कंपनियां और विशेष रूप से विदेशी कंपनियां बहुत बड़ी हैं। उदाहरण के लिए बायर एकमात्र कंपनी है, जो पूरे महाराष्ट्र से कृषि उत्पाद खरीद सकती है। ऐसे समय में जब रिलायंस जैसी कंपनी खुदरा क्षेत्र में प्रवेश करने की तैयारी कर रही है, इस तरह के कानून इन कंपनियों को बढ़ावा देने की पृष्ठभूमि तैयार कर रहे हैं। यह कृषि और किसानों को समाप्त करने की साजिश है।

ये शक्तिशाली कंपनियाँ क्षेत्र भर के किसानों के साथ समझौते करेंगी, शुरू में किसानों को अच्छे दामों की पेशकश करेंगी क्योंकि उनके पास बड़ी पूंजीगत राशि है। स्टॉकपिलिंग सीमा को हटाने और कृषि उपज बाजार समिति अधिनियम के निरसन के साथ, वे किसानों से बड़ी मात्रा में फसलों की खरीद और भंडारण कर सकेंगे। इस प्रकार कुछ ही वर्षों में ये विशाल बहुराष्ट्रीय कंपनियां भारत में कृषि व्यापार पर एकाधिकार स्थापित कर लेंगी।

जब उनका एकाधिकार स्थापित हो जाएगा, तो सभी छोटे व्यापारी समाप्त हो जाएंगे। उसके बाद, ये कंपनियां कृषि उत्पादन का भाव खुद तय करेंगी और किसानों को कम कीमत देंगी, क्योंकि तब किसानों के पास कोई दूसरा विकल्प नहीं होगा। दूसरी ओर, मंडियों में किसानों से माल खरीदने वाले लाखों छोटे व्यापारियों, दलालों और बिचौलियों का कारोबार बंद हो जाएगा।

भूख-कुपोषण-मुद्रास्फीति भस्मासुर : सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि यह देश की भूख और कुपोषण की समस्या को बढ़ाएगा। वर्तमान में कृषि मंडियां सरकारी अन्न खरीद की मुख्य केंद्र हैं। इनके निष्प्रभावी होने से सरकार धीरे-धीरे अन्न खरीद बंद करके सार्वजनिक वितरण प्रणाली को समाप्त कर देगी। उसकी जगह बहुसंख्यक सीमांत किसानों और गरीब/कमजोर जनता के खातों में प्रत्यक्ष अनुदान राशि जमा की अस्थायी योजना को लागू करके पूरी खाद्य सुरक्षा योजना को तोड़ना ही इसका उद्देश्य है। सार्वजनिक वितरण प्रणाली के टूटने से निजी व्यापारी जमाखोरी करके खाद्य कीमतें बढ़ा देंगे। इसलिए देश में अरबों गरीब लोगों पर एक बड़ा संकट आने वाला है। सार्वजनिक वितरण प्रणाली देश में जमाखोरी और मुद्रास्फीति पर अंकुश लगाने के लिए शुरू की गई थी।

इस प्रकार इन तीनों कानूनों को पारित करके, खुद को 'देशभक्त' कहने वाली सरकार भारतीय कृषि प्रणाली पर न केवल कंपनियों का नियंत्रण प्रतिस्थापित करने के लिए परिस्थितियां पैदा कर रही है, बल्कि देश को भूख और कृत्रिम सूखे की दलदल में भी धकेल रही है। देश भर के किसान संगठन इन कानूनों का विरोध कर रहे हैं। हम किसानों के इस आंदोलन का समर्थन कर रहे हैं। हम सरकार से निम्नलिखित मांग करते हैं।

* वर्तमान केंद्र सरकार द्वारा पारित तीनों किसान विरोधी कानूनों को बिना शर्त तत्काल रद्द करना चाहिए।
* सभी फसलों की उत्पादन लागत का डेढ़ गुना न्यूनतम मूल्य घोषित किया जाना चाहिए और सरकारी खरीद की कानून द्वारा किसानों को गारंटी दी जानी चाहिए।
* केंद्र और राज्य सरकारों द्वारा कृषि पर व्यय को दोगुना किया जाना चाहिए। बीज-उर्वरकों पर अनुदान बढ़ाया जाना चाहिए।
* स्वामीनाथन आयोग की स्थापना केंद्र सरकार ने नवंबर 2004 में की थी, भारतीय किसानों की परिस्थितियों में सुधार के लिए इस आयोग द्वारा प्रस्तुत सिफारिशों को लागू किया जाना चाहिए।

आइए हम सभी भारतीय इन चरमपंथी और हानिकारक कानूनों के खिलाफ इस राष्ट्रव्यापी आंदोलन में शामिल हों।

(चंदन पाल)
अध्यक्ष, सर्व सेवा संघ (अ. भा. सर्वोदय मंडल)

(पी वी राजगोपाल)
संयोजक, अ. भा. सर्वोदय समाज

प्रेरक प्रसंग

खुद के बारे में गांधी-

एक आश्चर्य की बात है कि संसार के सभी धर्मों के लोग मुझे अपना समझते हैं। जैन मुझे जैन समझते हैं, बौद्ध मुझे बौद्ध समझते हैं, ईसाई मुझे ईसाई समझते हैं। कुछ ईसाई मित्र तो यह भी कहते हैं कि आप ईसाई हैं परंतु डर के मारे आप यह स्वीकार नहीं करते। परंतु आप क्यों नहीं खुल्लमखुल्ला कहते हैं कि ''मैं ईसाई हूं और प्रभु ईसा का साम्राज्य स्वीकार करता हूं।'' बहुत से मुसलमान भाई मुझे मुसलमान मानते हैं। इतना नहीं तो कम से कम मैं मुसलमान बनने की तैयारी में हूं, ऐसा लोग कहते हैं।

× × ×

गांधी के बारे में टैगोर–

यह दिन आयेगा, ऐसी आशा मैंने नहीं रखी थी। देश की दशा देखकर कितने ही वर्षों से मैं लालसा रख रहा था कि क्या कोई कर्णधार नहीं निकलेगा? मुझे भय होता था कि ऐसे कर्णधार को देखे बिना ही मुझे चले जाना पड़ेगा। परंतु ईश्वर परम कृपालु है। आप आये और आपका समागम भी हुआ। इस काल में मैं जीवित रहा हूं, यही मुझे बड़ा सौभाग्य लगता है। आपकी जीत ही है। ज्ञान के आगे समस्त अविद्या का नाश है। अविद्या अर्थात आज का साम्राज्यवाद, आधुनिक सभी वाद कहिये न! इन सब वादों के बीच में सत्य का बम पड़ते ही सब चूर-चूर हो जायेंगे, यह निश्चित मानिये। आपकी कितनी ही आलोचना हो, लोग श्रद्धा न करें, कोलाहल और हत्याकांड हो तो भी आप अटल रहेंगे, ऐसा मुझे विश्वास है। सत्य और अहिंसा उस चमत्कारी पक्षी 'फिनिक्स' की भांति हजारों बार आग में पड़ने पर भी नित्य नवीन और सजीव ही होते रहेंगे। वह पक्षी कभी हारकर बैठने वाला नहीं है। और, आपका किया हुआ क्या कभी वृथा जायेगा? बुद्ध भगवान का किया हुआ वृथा गया क्या? भारत में भले ही बहुत बौद्ध न हों, परंतु बुद्ध भगवान के मंत्र तो हमारे जीवन के साथ गुंथे हुए हैं।

संकलन : मदनमोहन वर्मा/चित्रा वर्मा

मीडिया की गलत रिपोर्टिंग पर एडिटर्स गिल्ड की एडवाइजरी

❑ नित्यानंद गायेन

मोदी सरकार के कृषि कानूनों के खिलाफ देश भर के किसानों ने जो आन्दोलन शुरू किया है, उसे बदनाम करने की तमाम कोशिशों को पीछे धकेलते हुए इसने न केवल सरकार को वार्ता की मेज पर आने के लिए मजबूर कर दिया, बल्कि अपनी धमक को सात समुंदर पार भी पहुंचाने में सफल रहा। बावजूद इसके गोदी मीडिया अब भी आन्दोलन के बारे में तमाम अफवाहें, भ्रामक और गलत सूचनाएं फैलाने में लगातार व्यस्त है। इन्हीं सब चीजों को ध्यान में रखते हुए एडिटर्स गिल्ड ऑफ़ इंडिया ने एक जरूरी कदम उठाते हुए किसान आन्दोलन से जुड़ी रिपोर्टिंग पर एक एडवाइजरी जारी की है।

गिल्ड द्वारा जारी इस एडवाइजरी में कहा गया है कि एडिटर्स गिल्ड किसान आन्दोलन से जुड़ी रिपोर्टिंग के तरीकों को लेकर चिंतित है। राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र में किसानों के आन्दोलन के बारे में मीडिया का एक हिस्सा इसे कभी 'खालिस्तान' और 'देशद्रोह' जैसे शब्दों के साथ जोड़कर बिना किसी सबूत या साक्ष्य के भ्रम फैलाकर इसे बदनाम करने की कोशिश में लगा हुआ है। इस तरह की हरकत मीडिया के उसूलों और एथिक्स के खिलाफ है। यह पत्रकारिता की नैतिकता को चोट पहुंचाता है। ऐसी हरकतें मीडिया की विश्वसनीयता के साथ धोखा हैं।

एडिटर्स गिल्ड ने एडवाइजरी में कहा है कि मीडिया संस्थानों को किसानों के विरोध करने के संवैधानिक अधिकार का हनन किये बिना निष्पक्ष, सही, तथ्यात्मक और संतुलित रिपोर्टिंग करनी चाहिए। किसी की वेशभूषा, उसका खान-पान और चेहरा देख कर मीडिया को अपनी ओर से किसी भी तरह की कहानी गढ़ने से बचना चाहिए।

गौरतलब है कि किसानों के प्रदर्शन को लेकर मोदी कैबिनेट में मंत्री और पूर्व सेना अधिकारी जनरल वीके सिंह ने आपत्तिजनक टिप्पणी करते हुए कहा था कि जब मैं फोटो देखता हूं तो उनमें किसान दिखाई नहीं देते हैं। बहुत कम किसान दिखाई देते हैं।

इन चैनलों के प्रति किसान इतने आहत हैं कि प्रदर्शन स्थल पर इन मीडिया चैनलों का प्ले कार्ड बना कर सभी किसानों से इन्हें कोई इन्टरव्यू या बाइट न देने की अपील की गयी। किसानों ने कहा कि इन्हें शर्म नहीं आती, ये हमारी माताओं के बारे में गलत बातें फैला रहे हैं। ये लोग कह रहे हैं कि किसान उग्र प्रदर्शन कर रहे हैं। इन लोगों को शर्म आनी चाहिए, ये लोग झूठ फैलाते हैं।

गौरतलब है कि जब पंजाब के किसान 25 तारीख को दिल्ली मार्च करते हुए हरियाणा पहुंचे थे तो उनके मार्च को रोकने के लिए खट्टर सरकार ने राज्य की पूरी पुलिस और केन्द्रीय पुलिस बलों के जवानों के जरिये जगह-जगह बाधाएं खड़ी कर दी थीं। इसके तहत सड़क पर बैरिकेड्स लगाने, गड्ढे खोदने, कंटीले तार की बाड़ लगाने, ट्रकों और अन्य गाड़ियों से सड़कों को ब्लॉक करके जगह-जगह रुकावट डालने की कोशिश की गयी। यहां तक कि किसानों पर वाटर कैनन से पानी की बौछार की गयी। फिर आंसू गैस के गोले भी फेंके गए। सड़कों को इस तरह से घेरा गया था कि एम्बुलेंस के लिए भी रास्ता नहीं था। जब किसान एक एम्बुलेंस को रास्ता देने के लिए रास्ते से बैरिकेड्स हटा रहे थे तो उस दृश्य को गोदी मीडिया ने एक तरफा क्लिप चलाकर किसानों की हिंसा और तोड़फोड़ के रूप में दिखाया था। ❑

अतीत के किसान आंदोलनों से अलग और खास है यह आंदोलन!

❑ उर्मिलेश

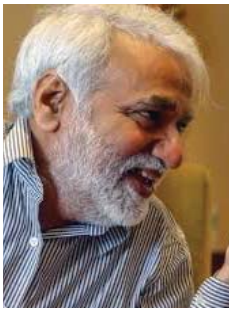

कुछ भयानक प्रदूषित महानगरों को छोड़कर मुझे तो भारत का हर हिस्सा सुंदर लगता है। कुछ सूबे/इलाके ज्यादा अच्छे लगते हैं, जैसे पंजाब, केरल, बंगाल, असम, झारखंड, छत्तीसगढ़ के कुछ इलाके, गोवा, महाराष्ट्र के कुछ इलाके और कश्मीर भी! पर पंजाब का आकर्षण सबसे अलग है! संयोगवश, इस वक्त पंजाब और उसके किसान राष्ट्रीय ही नहीं, अंतरराष्ट्रीय चर्चा का विषय बने हुए हैं। भारतीय जनता पर हुए सत्ता-कारपोरेट के साझा-हमले के विरुद्ध आज देश में जो बड़ी लोकतांत्रिक लड़ाई लड़ी जा रही है, उसकी वैचारिक और सांगठनिक अगुवाई पंजाब और पंजाबी किसान ही कर रहा है।

क्या यह तथ्य पंजाब को नायाब और सबसे अलग नहीं दिखाता? इस शांतिपूर्ण-लोकतांत्रिक आंदोलन के स्वरूप, सोच और दिशा में गजब की एकरूपता है। मुझे याद नहीं, ऐसा कोई बड़ा जन-आंदोलन हाल के कुछ दशकों में पहले कभी हुआ हो! यह एक ऐसा सत्याग्रह है, जिसमें लोकतांत्रिकता के साथ दृढ़ता है, वैचारिकता है, देशी कारपोरेट और साम्राज्यवादी वित्तीय पूंजी के विरुद्ध राष्ट्रीय चेतना की संगठित सामाजिक-अभिव्यक्ति है। आंदोलन में हर समुदाय के किसान हैं, पुरुष, महिलाएं, युवा और बूढ़े भी। लेकिन नेतृत्व में किसी राजनीतिक दल की सीधी या पर्दे के पीछे से कोई भूमिका नहीं है।

दिल्ली-हरियाणा के बीच की सड़क पर इन कड़ी सर्दियों में भी किसान दिन-रात खुले आसमान के नीचे पड़े हुए हैं। कार्यकर्ता से नेता तक, सब एक जगह, एक जैसी स्थिति में! अब तक विभिन्न कारणों से इस आंदोलन में शामिल अनेक लोगों की मौत भी हो चुकी है। पर हजारों लोगों के लिए मिल-जुलकर धरना-स्थल पर ही खाना पक रहा है, वहीं बैठकें हो रही हैं, बहुतेरे बच्चे वहीं पढ़ाई भी कर रहे हैं और आंदोलन के पक्ष में गाने-बजाने का दौर भी चल रहा है।

पंजाब से उठे इस किसान आंदोलन का चेहरा अब व्यापक जन-आंदोलन का चेहरा बन चुका है। समाज का शायद ही कोई तबका हो, जिसके लोग इसमें शामिल न हों! इसमें देश के ज्यादातर सूबों के लोग शामिल हो गये हैं। आंध्र-केरल से लेकर असम-बंगाल, कर्नाटक से बिहार और यूपी से ओडिशा तक हर जगह इस आंदोलन के पक्ष में आंदोलन-धरने प्रदर्शन हो रहे हैं। सिंघू बार्डर पर भी पंजाब-हरियाणा के किसानों के साथ दर्जन भर से ज्यादा राज्यों के किसान जमे हुए हैं। पंजाब के किसान अपने लंगर के लिए खाद्यान्न लेकर चले थे।

पर उनके खाद्यान्न उनके टैक्टरों-ट्रकों में ही पड़े हुए हैं। हरियाणा और दिल्ली के आसपास के लोग खाद्यान्न, फल-सब्जी और यहां तक कि कंबल और गद्दा तक पहुंचा रहे हैं। इसके लिए किसी ने अपील नहीं की है। किसी तरह की सहायता का आह्वान नहीं किया गया है। आम किसान और अन्य लोग स्वाभाविक और अपनी पहल पर यह सब कर रहे हैं। इस आंदोलन ने जो राजनीतिक विचार पेश किया है, वह दीवार पर लिखी इबारत की तरह साफ है। इसका मुख्य राजनीतिक लक्ष्य है-सत्ताधारियों के साथ गलबहियां करते देश के बड़े कारपोरेट और भारत के विशाल खाद्यान्न बाजार पर कब्जा करने में जुटीं कुछ वैश्विक कंपनियों के गठबंधन की खतरनाक परियोजना को विफल करना। तीन बेहद जन-विरोधी और राष्ट्र-विरोधी कानूनों के जरिये यह बहुद्देशीय योजना सामने आई है।

इस आंदोलन ने अपने स्पष्ट राजनीतिक विचार के साथ अपनी विशिष्ट जन-समावेशी संस्कृति और लोकतांत्रिक कार्यशैली को भी दुनिया के सामने रखा है। किसी भी आंदोलन में ऐसी वैचारिकता, व्यापक जन-एकता और नेता से कार्यकर्ता के बीच आंदोलन के मुद्दों पर ऐसी एकरूपता दुर्लभ है। ऐसी पारदर्शिता तो सचमुच हाल के किसी आंदोलन में कभी नहीं दिखी। कोई भी मुद्दा उभरता है तो सारे 35 या 40 (या कभी-कभी इससे ज्यादा भी) किसान नेता धरना-स्थल पर बैठकर गहन चर्चा के बाद भावी रणनीति का फैसला करते हैं।

इस मामले में भी भारत के आधुनिक इतिहास का यह अनोखा आंदोलन है। तीनों कृषि कानूनों को देशी-विदेशी कारपोरेट-संपोषित अर्थनीति और विदेशी ताकतों के इशारे पर लाये कथित सुधारों के कानूनी-उत्पाद और उपकरण के तौर पर देखा जाना चाहिए। देश का ताकतवर मीडिया, खासतौर पर न्यूज चैनल और ज्यादातर बड़े अखबार भी देशी-विदेशी कारपोरेट के साथ खड़े हैं। आंदोलन और जनता के खिलाफ खड़े मीडिया की लोकतंत्र में ऐसी तस्वीर कहां देखी गयी? महामारी की भयावहता से भी किसानों को जूझना पड़ रहा है। ऐसे में सवाल उठता है कि आंदोलन की इस फौलादी एकता, प्रतिबद्धता और इसके आवेग के पीछे क्या कहानी है?

मौजूदा सत्ता और इसके बड़े सियासी रणनीतिकार बड़ी आसानी से बड़ी-बड़ी पार्टियों और आंदोलनों में दरार पैदा कर देते रहे हैं या जनाक्रोश को दमन या किसी न किसी तिकड़म के बल पर दबा देते रहे हैं। वे इस आंदोलन के साथ अब तक ऐसा कुछ भी नहीं कर सके। विज्ञान भवन में होने वाली वार्ताओं में किसान नेताओं को वे सरकारी चाय पिलाने में भी कामयाब नहीं हो सके। आखिर ये किसान आंदोलनकारी इतने अलग और खास क्यों दिख रहे हैं? आखिर एक निरंकुश और चालाक सत्ताधारी समूह के विरुद्ध पंजाब के किसानों में ऐसी ताकत और बेमिसाल संगठन-शक्ति कहां से आई? इसके सामाजिक-राजनीतिक स्रोत क्या हैं?

सन् 1995-97 के बीच मैं पंजाब में दो साल रह चुका हूं। इन दो सालों के प्रवास से पहले भी एक रिपोर्टर के तौर पर पंजाब के लगभग हर जिले, हर इलाके को देखने-समझने का मौका मिला। ऑपरेशन ब्लू स्टार के पहले और बाद में वहां रिपोर्टर के तौर पर दो बार

जाना हुआ था। मैंने उस समाज के दोनों पहलू देखे। अगर कहीं कट्टरता सर उठा रही थी तो उसी जमीन से उसका विरोध और प्रतिकार भी देखा। इसके लिए लोगों ने जान दे दी। यह सच है कि वहां के समाज में सब कुछ अच्छा ही अच्छा नहीं है, कुछ कमियां भी हैं। वह हर जगह, हर समाज और हर व्यक्ति में होती हैं। जहां शहीदे-आजम भगत सिंह पैदा हुए, वहां कुछ बुरे लोग भी पैदा हुए।

लेकिन पंजाब के बारे में यह बात मैं दावे के साथ कह सकता हूं कि इस सरहदी सूबे और इसके समाज में गजब की खूबियाँ हैं, जो इसकी कुछेक कमियों को भी ढंक देती हैं! पंजाब की ये खूबियाँ सिर्फ उसकी नदियों, उपजाऊ जमीन और तीखी नाक-नक्श वाले लोगों के कारण ही नहीं हैं, उसके समाज की बुनावट और विशिष्ट सांस्कृतिक-सामाजिक सोच की वजह से भी हैं। यह एक ऐसा समाज है, जहां सिख गुरुओं और अन्य समाज-सुधारक संतों की शिक्षाओं का असर सबसे ज्यादा है। सिखों का सबसे पवित्र और महत्वपूर्ण ग्रंथ है-गुरु ग्रंथ साहिब! वह विभिन्न संतों की वाणी का संग्रह है। इनमें छह सिख गुरुओं-नानक जी, अंगद देव जी, अमर दास जी, राम दास जी, अर्जन दास जी और तेग बहादुर जी के अलावा संत कबीर सबसे उल्लेखनीय हैं।

ब्राह्मणवादी-वैचारिकी और हिन्दुत्ववादी धार्मिकता से अलग धार्मिक-आध्यात्मिक चिंतन की जितनी भी भारतीय धाराएं हैं, कमोबेश उन सबका पंजाब और यहां के सिखों व गैर-सिखों पर गहरा असर दिखता है। इनमें नामदेव, बाबा फरीद, बुल्ले शाह, रविदास, भिक्खान, बेनी, साधना आदि प्रमुख हैं। इन गुरुओं और संतों की शिक्षाओं को हर वर्ग, हर बिरादरी और हर पिंड में श्रद्धा के साथ याद किया जाता है! सिख गुरुओं, अन्य संतों और फकीरों की शिक्षाओं ने इस समाज को जोड़ा है और ताकतवर बनाया है। 'हिंदुत्व' या ब्राह्मणवादी कर्मकांडों पर आधारित धर्म अपनी ताकतवर वर्णव्यवस्था के चलते सामाजिक स्तर पर हमेशा विभाजनकारी और भेद-भाव आधारित रहा है। इसीलिए पंजाब में इसका आम लोगों पर कभी ज्यादा असर नहीं पड़ा।

कुछ हिंदुत्ववादी संगठनों और यहां तक कि आर्य-समाजियों ने एक दौर में सिख पंथ से अलग अपने प्रभाव-विस्तार की भरपूर कोशिश की। भाषा और जाति का भी इस्तेमाल करने की रणनीति अपनायी गई। पर वर्णवाद आधारित हिंदुत्ववाद और उसके मान-मूल्यों को पंजाब और पंजाबी समाज ने कभी दिल से मंजूर नहीं किया। स्वाभाविक सेक्युलरवाद पंजाबियत में घुलमिल गया-शक्कर और पानी की तरह। यही कारण है कि पंजाब में ब्राह्मणत्व को कभी स्वीकार्यता नहीं मिली। सिख गुरुओं और संतों की शिक्षाओं में वर्ण-जाति के निषेध के साथ हर जगह और हर धर्म के लोगों को एक जैसा माना गया। इस तरह किसी एक धर्म या एक ईश्वर के बजाय मनुष्यता को सर्वोच्च माना गया। यह भी कहा गया कि सभी कुदरत के बंदे हैं - 'ईश्वर, अल्ला नूर उपाया कुदरत दे सब बंदे, एक नूर ते सब जग उपज्या, को भले को मंदे।'(गुरु ग्रंथ साहिब में संकलित संत कबीर की पंक्तियां)। गुरु नानक जैसे ज्ञानवान और विचारवान महामानव ने जिस पंथ का मार्ग प्रशस्त किया, वह सिर्फ भारत ही नहीं, दुनिया के सभी धर्मों-पंथों में न सिर्फ सबसे नया और सबसे आधुनिक है, अपितु सबसे मानवीय और तार्किक भी है।

अलग और विशिष्ट सामाजिक-सांस्कृतिक बोध का यह भी एक बड़ा कारण है कि मौजूदा सत्ता की अगुवाई करने वाले लोगों की दाल पंजाब या वहां के किसानों में नहीं गल पा रही है। सत्ताधारियों के पास सिर्फ हिंदुत्ववादी सोच ही नहीं है, देशी-विदेशी कारपोरेट की शक्ति भी है। ऐसी ताकतवर व निरंकुश सत्ता से टकराना कोई आसान काम नहीं है। लेकिन मौजूदा किसान आंदोलन का पंजाब आधारित नेतृत्व जिस सामाजिक-धार्मिक पृष्ठभूमि से निकला है, उसके मूल में समावेशी राजनीतिक सोच और सुसंगत जीवन-मूल्य हैं। इसके कुछ अहम पहलू हैं-अन्याय का हर कीमत पर विरोध, हर तरह के हमलों से किसानों और समाज के अन्य कमेरे हिस्सों को बचाना और इस तरह राष्ट्रीय अस्मिता की रक्षा करना। आंदोलन के भविष्य की अटकलों में मैं नहीं पड़ूंगा। पर इतना जरूर कह सकता हूं कि इस आंदोलन ने राजनीतिक-आर्थिक रूप से संकटग्रस्त भारत को लोकतांत्रिक प्रतिरोध का एक सुसंगत और समावेशी मॉडल दिखाया है। ❑

गांधी जागा, खून की तरह रगों में.

सरकार ने कहा चाय पीजिये, किसानों ने विनम्रता से मना किया और बोले- हमारे लंगर पर आइये, जलेबी खिलाएंगे।

सरकार ने कहा, आइये लंच खाइये, आपके लिए व्यवस्था की है. किसानों ने कहा, हम अपना खाना साथ लाये हैं, धन्यवाद. ज़मीन पर, धरती माता की गोद मे बैठ कर अपनी मेहनत से उपजाया भोजन किया. धरती अपने लाडलों को आश्रय देती है, भोजन भी, वे किसी के मोहताज नहीं.

गांधी को वायसराय ने डिनर पर बुलाया, गांधी ने उपवास तोड़ा ही था. वायसराय की पत्नी ने गांधी को टेबल पर सजे व्यंजन दिखाए, कोई 54 तरह के व्यंजन थे. गांधी ने विनोद किया-'इतना सारा खाना, आप दो लोगों के लिए? क्या आप भी मेरी तरह उपवास पर थे।' लेडी ने कहा-नहीं महात्मा, ये आपके स्वागत में है. गांधी बोले, धन्यवाद, मैं अपना खाना साथ लाया हूँ. खोला बक्सा, निकाली खिचड़ी, दही बकरी के दूध की और लकड़ी की टूटी चम्मच, धागे से मरहम पट्टी की हुई. लेडी ने एक चमकता चम्मच गांधी को देना चाहा। महात्मा ये लीजिये, आपकी चम्मच कमज़ोर सी है, गांधी ने कहा, है कमज़ोर मेरे देश की तरह, पर टूटी नहीं है, लड़ रही है, मेरे देश की तरह, मेरा देश भी लड़ता रहेगा, लीजिये ये दही चखिए.'

जब किसानों ने सरकार के छप्पन भोग त्यागे, अपने लंगर की भाजी रोटी खाई, तो लगा कि गांधी जागा, खून की तरह दौड़ उठा देश की रगों में. लगा कि कई सारे गांधी बैठ गए कतार में, अपनी मेहनत और सच्चाई की रोटी खाने. ज़िंदाबाद! **-अरविन्द कुमार दूबे**

मीडिया और सरकार की छाती पर रोटी दलता किसान

❑ नवीन कुमार

दिसंबर की तीसरी तारीख भारत के इतिहास में किसी भी चुनी हुई सरकार के लिए भयावह शर्मिंदगी से भरी हुई थी। किसान संगठनों के नेताओं ने पहली बार प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी का इंतजामिया छप्पनभोग ठुकरा दिया था और अपनी लायी हुई रोटियां अखबार पर रखकर विज्ञान भवन के कॉरिडोर में बैठ गये थे।

अगर आपको डर लगता है या फिर आप शर्मिंदगी नाम के भाव से परिचित हों, सार्वजनिक जीवन में सदाचार और संवेदना नाम के व्यवहार को समझते हों, तो विज्ञान भवन में माथे से रोटी को लगाती हुई किसान की तस्वीर पिछले कई दशकों की सबसे ज्यादा विचलित करने वाली तस्वीर है। इसके दो दिन पहले नरेंद्र मोदी वाराणसी में गंगा के बीच लेज़र शो देख रहे थे। सिंघु बॉर्डर, टिकरी बॉर्डर और गाजीपुर बॉर्डर के त्रिकोण के बीच तनी इन वास्तविक तस्वीरों पर दुर्दांत पत्रकारिता की फंतासियां फिल्म सिटी के स्टूडियोज से निरंतर जारी हैं।

आप किसानों के किसी भी मोर्चे पर चले जाइए। एक लक्ष्मण रेखा साफ दिखायी देती है। इस लक्ष्मण रेखा के एक तरफ किसान हैं, उनका संघर्ष है, उनके गीत हैं, उनकी लोकतांत्रिकता है, भगत सिंह का रंग दे बसंती चोला है और दूसरी तरफ जनरल डायर के हुक्म के इंतजार में बैठी हुई पुलिस है, उस पुलिस की बर्बरता को वीरता में बदलने वाले पत्रकार हैं, फिल्म सिटी से भेजे हुए नैतिकता के सुपारी किलर हैं और उनकी आपाद जहालतें हैं। इस लकीर का जिक्र इसलिए करना पड़ रहा है कि आप स्थिति को ठीक-ठीक समझ सकें।

पहली दिसंबर की शाम सिंघु बॉर्डर पर जी न्यूज का एक रिपोर्टर एक वाकथ्रू करते हुए खालिस्तान का जिक्र ले आता है। जाहिर सी बात है, उसने किसानों के बीच जाने की कोई कोशिश नहीं की थी। खालिस्तान का जिक्र आते ही ट्रैक्टर ट्रॉलियों से कोई चार नौजवान उछलकर उसके सामने खड़े हो जाते हैं और खालिस्तान का जिक्र लाने का कारण पूछते हैं। रिपोर्टर कोई जवाब नहीं दे पाता। कैमरा बंद हो जाता है। वहीं पर एबीपी न्यूज का एक संवाददाता खड़ा होता है। उसने भी किसानों के बीच जाने की कोई कोशिश नहीं की।

सर्दियों में शाम जल्दी ढल जाती है। इसके बाद किसानों का अरदास शुरू हो जाता है, जो बाद में संगत से खाने की पंगत में बदल जाता है। उस समय भाषण बंद हो जाता है और राजनीतिक बातें थमने लगती हैं। मुझे महाभारत का युद्ध याद आता है, जिसमें नियम तय किया गया था कि सूरज ढलने के बाद किसी पर कोई हमला नहीं किया जाएगा और दोनों खेमों की आवाजाही में कोई रोकटोक नहीं होगी।

नौजवान तख्तियां लेकर घूम रहे हैं कि हम आजतक, रिपब्लिक, ज़ी न्यूज़ और टीवी 9 भारतवर्ष का बहिष्कार करते हैं। कोई किसान इनसे बात नहीं करेगा। इसके कारणों में जाने का कोई अर्थ नहीं। इसकी वजह सबको पता है, लेकिन जो इन किसानों के बीच जाने पर ही समझ में आता है, वह ये कि जनमत निर्धारण में इस समय टीवी चैनलों की प्रासंगिकता ध्वस्त हो रही है। न तो किसानों के लिए उनकी कोई भूमिका रह गयी है और न ही सरकार के लिए।

बीजेपी ने बार-बार टीवी चैनलों के पर्दे के पीछे छिपकर किसानों पर वार किया। पहली बार तब, जब किसान पंजाब समेत छह राज्यों से दिल्ली के लिए हजारों के जत्थे में रवाना हुए। यह माना नहीं जा सकता कि ब्यूरो रिपोर्टरों को इसकी हवा न लगी हो, पहले तो किसी ने नोटिस ही नहीं लिया। ढाई से ज्यादा किसान संगठनों की अपील को एक दो पत्रकार हवा में उड़ा दें तो समझ में आता है लेकिन सैकड़ों पत्रकार और दर्जनों टीवी चैनल इसे हवा में उड़ा दें तो समझ में आता है कि तहरीर कहां से आयी है। किसानों ने इसकी कोई परवाह नहीं की। दूसरी बार तब, जब किसानों को रोकने के लिए खट्टर सरकार ने बर्बरता की सारी हदें तोड़ डालीं। टीवी चैनलों ने भरसक इसे छिपाने की कोशिश की लेकिन सोशल मीडिया ने ऐसा दबाव बनाया कि टीवी चैनलों के दिखाने न दिखाने से फर्क पड़ना ही बंद हो गया।

इसके बाद किसानों के आंदोलन को शाहीनबाग से जोड़कर देश विरोधी साबित करने की कोशिश हुई। यह लंपटता भी नहीं चली। पांचवीं फूहड़ता टीवी ने तब की, जब किसानों ने सरकार की रोटी चाय ठुकरा दी और वार्ता के बीच लंगर से प्रसाद मंगवाया। यहां तक किसान समझ चुके थे कि उन्हें अपनी बात रखने के लिए टीवी की जरूरत नहीं है। उल्टा टीवी उनकी मांगों और वैचारिकी के गिद्धभोज की ताक में बैठा है। यह अचानक नहीं है कि किसानों ने अपने मैदानों में टीवी चैनलों के बहिष्कार का पोस्टर छाप दिया है। इससे किसान कतई परेशान नहीं है। उसकी बात जहां तक पहुंचनी चाहिए, वहां तक अब ज्यादा बेहतर तरीके से पहुंच रही है, लेकिन इससे बीजेपी के लिए बहुत मुश्किल खड़ी हो गयी है क्योंकि वह किसानों को दहशतगर्द, खालिस्तानी, गुंडा-मवाली साबित करने की अपनी चाल में सफल नहीं हो पा रही है।

गौर कीजिए। खिसियाए हुए टीवी चैनलों ने हैदराबाद नगर निगम के नतीजों में ही अपनी क्रूरता की प्राण प्रतिष्ठता करनी शुरू कर दी थी। 11 बजते-बजते तो बात यहां तक पहुंच गयी थी कि बीजेपी की जीत का सेहरा अमित शाह पर बंधेगा या जेपी नड्डा के। योगी का कितना हिस्सा होगा और मोदी का कितना। दो घंटे के भीतर बीजेपी की जीत का जश्न मनाने वाले चैनलों के न्यूजरूम में मुर्दनी छा गयी थी। उछलते हुए एंकर निढाल पड़ गये थे। उनका रंग उतर गया था।

यहां एक और बात को समझने की कोशिश कीजिए। दिल्ली को किसानों ने हर तरफ से घेर रखा है। चीजों की किल्लत होने लगी है। कारखाने कच्चे माल की आमद के बगैर बंद पड़े हैं। जल्दी ही दूध, फल, सब्जी, अंडा, चिकन की भी कमी महसूस होने लगेगी। किसी टीवी चैनल ने अपने किसी बड़े एंकर को किसान आंदोलन के बीच शो करने के लिए नहीं भेजा है, जबकि शाहीनबाग के आंदोलन के अंत तक चैनलों को इतनी शर्म आयी थी कि वे वहां पहुंच गये थे। इसकी वजह बहुत साफ है। चैनल जानते हैं कि आंदोलनों को सांप्रदायिकता के रंग में रंगने में माहिर उनके एंकरों ने अगर किसानों को अपने खेल का मोहरा बनाने की कोशिश की तो उनका बचा-खुचा नकाब भी उतर जाएगा। इस आंदोलन ने मोदी और उनके लठैत चैनलों को बहुत सीधा संदेश भेजा है- किसान को खालिस्तान और मुसलमान समझने की भूल की तो आपको हमारे ईमान का रंग देखना होगा। सरकार और टीवी वाले दोनों इसी से डरे हुए हैं।

-आर्टिकल-19

शहद में मिलावट

हिन्दुस्तानी मधुमक्खियों को बेरोजगार करने की साजिश का भांडाफोड़

❑ सुनील कुमार

देश में आयुर्वेदिक दवाइयां बनाने वाली कंपनियों के अलावा दर्जनों दूसरी कंपनियां शहद बेचती हैं। शहद कारखाने में तो बन नहीं सकता इसलिए वह गांव-जंगल में बसे हुए असंगठित लोगों से होकर इन कंपनियों तक पहुंचता है या मधुमक्खी पालकों के माध्यम से आता है। देश की सबसे बड़ी पर्यावरण-संस्था सीएसई ने अभी एक बड़ी वैज्ञानिक पड़ताल की तो पता लगा कि देश के अधिकतर ब्रांड अपने शहद में एक ऐसा चीनी प्रोडक्ट मिला रहे हैं, जो भारत में शहद की जांच को धोखा देता है। चीन से आए हुए इस घोल को शहद में मिलाकर उसकी जांच की जाए तो वह उसे खालिस शहद ही बताता है। नतीजा यह हुआ है कि देश के मधुमक्खी पालक लोग इस धंधे को छोड़ने के कगार पर हैं क्योंकि उनके तैयार किए हुए शहद से आधे से भी कम दाम पर यह चीनी सिरप आ रहा है, और खबर ऐसी भी है कि चीन की कंपनियों ने यह सिरप तैयार करने के कारखाने भारत में भी बनाए हैं। ऐसा सिरप गैरकानूनी नहीं है क्योंकि पिपरमेंट बनाने में भी इसका इस्तेमाल होता है, लेकिन इसने हिन्दुस्तान के शहद-उत्पादन और बिक्री को पूरी तरह मिलावटी बनाकर छोड़ दिया है।

सेंटर फॉर साइंस एंड एनवायरमेंट की यह जांच बताती है कि जैसे-जैसे इस सिरप का इस्तेमाल भारत के शहद कारोबार में बढ़ता गया, मधुमक्खी पालकों को उनके शहद का मिलने वाला बाजार भाव गिरता चला गया। हिन्दुस्तान में आयुर्वेद, प्राकृतिक चिकित्सा, या घरेलू नुस्खों में शहद के फायदे ही फायदे गिनाए गए हैं। लोग तरह-तरह से इसका इस्तेमाल करते हैं, लेकिन दिलचस्प बात यह है कि 2018 में भारत सरकार ने शहद में मिलावट की जांच के कुछ पैमानों को रहस्यमय तरीकों से कमजोर कर दिया, जिससे मिलावटी शहद की शिनाख़्त मुश्किल हो गई। अब भारत सरकार के फैसलों को कोई गांव के शहद उत्पादक तो बदलवा नहीं सकते, इसलिए ऐसी रहस्यमय रियायत के पीछे देश की बड़ी कंपनियां ही रही होंगी। *जो देश हजारों बरस पहले के आयुर्वेद का गौरवगान करते हुए थकता नहीं है, वह आयुर्वेद में व्यापक रूप से इस्तेमाल होने वाले इस सामान में मिलावट का रास्ता भारत सरकार के स्तर पर खोलता है तो इसे क्या समझा जाए? ऐसे में तब हैरानी नहीं होनी चाहिए,* जब पश्चिम के कई विकसित देश भारत की आयुर्वेदिक दवाइयों को जोखिम के पैमाने पर उन पर रोक लगाते हैं। एक तरफ जहां दुनिया खानपान की चीजों की जांच के पैमाने कड़े बनाती चल रही है, वहीं पर भारत सरकार ने 2018 में यह जानते हुए अपने पैमानों को लचर और कमजोर बनाया कि चीन से आयात होने वाले ऐसे सिरप का इस्तेमाल लोग शहद बनाने में कर रहे हैं, क्योंकि इससे लागत घट जाती है और ये सिरप कारखानों से आसानी से हासिल है।

आज सवाल यह है कि सीमित साधन-सुविधाओं वाला एक पर्यावरण-संगठन जिस बात की जांच करके इस मिलावट का भंडाफोड़ कर रहा है, वह काम भारत सरकार अपनी जांच एजेंसियों, निगरानी एजेंसियों के रहते हुए भी नहीं कर पा रही है या शायद यह कहना अधिक सही होगा कि नहीं कर रही है। जिस चीन के साथ भारत सरकार सरहद पर जीत और हार के बीच डांवाडोल चल रही है, उसी चीन से खुलेआम भारत में आने वाले ऐसे सिरप से हिन्दुस्तान के दसियों लाख मधुमक्खी पालकों के बेरोजगार होने की नौबत आ गई है। हिन्दुस्तान के मिलावटखोर कारोबारी धड़ल्ले से चीनी उत्पाद मंगा रहे हैं और वह कानूनी रास्ते से आकर गैरकानूनी मिलावट में 50 से 80 फीसदी तक मिलाया जा रहा है और सरकार की जांच में वह खालिस शहद साबित हो रहा है।

आज दुनिया के देशों में कारोबार उसी हालत में चल सकते हैं, जबकि वे देश-विदेश की ऐसी साजिशों के शिकार न हों। आज देश का कोई ईमानदार शहद उत्पादक ब्रांड क्या खाकर मिलावटी शहद का मुकाबला कर सकता है, अगर मिलावटी शहद को शुद्ध होने का सरकारी सर्टिफिकेट आसानी से हासिल हो सकता है। सरकार की निगरानी एजेंसियां अगर ऐसे व्यापक और संगठित कारोबार को रोकने का काम नहीं कर सकतीं, तो ऐसी विदेशी मिलावट किसी भी देसी कारोबार को सडक़ पर ला सकती है। एक तरफ तो चीन के बने हुए सामानों के खिलाफ राष्ट्रवादी फतवे दीवाली की झालरों की बिक्री बंद करवा देते हैं, दूसरी तरफ चीन के ऐसे विवादास्पद सामान हिन्दुस्तान के एक सबसे पुरानी और परंपरागत औषधि सामग्री को कानूनी धंधे से बाहर ही कर दे रहे हैं।

यह पूरा सिलसिला एक निराशा पैदा करता है क्योंकि यह देश में कुटीर उद्योगों को खत्म करने का मामला तो है ही, यह देश में आयुर्वेद और प्राकृतिक चिकित्सा की साख को खत्म करने का मामला भी है। आज देश भर में कहीं खादी ग्रामोद्योग के तहत, तो कहीं प्रदेश शासन के वन विभाग के मातहत वनवासियों के लिए शुरू किए गए मधुमक्खी पालन की अर्थव्यवस्था को ऐसी मिलावट खत्म कर रही है। जब शहद उत्पादकों को कुछ बरस पहले के दाम से आधा दाम भी आज नहीं मिल रहा है, तो जाहिर है कि उनकी रोजी-रोटी चीनी कंपनियों के मिलावट के कच्चे माल की शक्ल में आ रही है और हिन्दुस्तानी मधुमक्खियों को भी बेरोजगार कर रही है।

सीएसई ने एक वैज्ञानिक-पड़ताल की रिपोर्ट सार्वजनिक की है और जाहिर है कि वह भारत सरकार की नजरों में तो आ ही चुकी है। भारत में लोगों को रोजगार देने का जो सरकारी दावा है, उस दावे को कुचल-कुचलकर मारने का काम यह मिलावटी-कारोबार कर रहा है। यह सिलसिला खत्म होना चाहिए। आज सरकार के पास तमाम सुबूतों के साथ यह मामला तश्तरी में पेश किया गया है। इस पर भी अगर कार्रवाई नहीं होती तो देश के लोग शहद के फायदों की बात को आयुर्वेद का इतिहास मानकर उसका चिकित्सकीय उपयोग भी बंद कर देंगे। केन्द्र सरकार न सिर्फ जांच करे, बल्कि मिलावट करने वालों को तेजी से जेल भेजे, कड़ी से कड़ी कार्रवाई करे, और चाहे जितनी बड़ी कंपनी हो, ऐसी कंपनियों को बंद करवाने की कानूनी पहल करे। अगर यह सरकार ऐसा नहीं करती है, तो फिर यह सवाल बना रहेगा कि 2018 में मिलावट पकड़ने वाली जांच के कड़े नियम क्यों ढीले किए गए थे। ❑

सादगी सुंदर है, गरीबी सुंदर नहीं!
संयम सुंदर है, मजबूरी सुंदर नहीं!!

❑ पुरुषोत्तम अग्रवाल

भारत माता की जय स्वाधीनता आंदोलन के दिनों का बहुत लोकप्रिय नारा था। कौन है भारत माता? इस सवाल के पीछे जवाहरलाल नेहरू के चिंतन का रेजोनेन्स (अनुकंपन) है। पंडित जवाहरलाल नेहरू डिस्कवरी ऑफ इंडिया में इस पर विचार करते हैं। संस्मरण की तरह विचार करते हैं कि मैं जब भी किसी सभा में जाता हूं, तो वहां नारा लगता है 'भारत माता की जय।' मैं लोगों से पूछता हूं कि कौन है भारत माताद्ध जिसकी हम जय बोलते हैं। तब कोई कहता है, हमारे गांव की धरती। कोई कहता है, देश की धरती। मैं लोगों से कहता हूं कि हां, यह सब तो है ही, लेकिन असल में इस देश की जनता, आप। आप हैं भारत माता। आपकी जय भारत माता की जय है। नेहरू इस रिफ्लेक्शन में भारत माता की जय की पॉपुलर इमेज पर भी चर्चा करते हैं। वह कहते हैं कि भारत माता एक ऐसी देवी के रूप में हमारे दिमाग में हैं, जो एटर्नल है, कालातीत है, बहुत प्रभावी है, सुंदर है और उसी रूप में हम उन्हें देखते हैं।

वास्तविकता यह है कि जो हमारी असली भारत माता है, वह गरीबी की जकड़ में है। बहुत ही मार्मिक वाक्य है नेहरू का- एंड पॉवर्टी इज नॉट ब्यूटीफुल। गरीबी सुंदर नहीं है। सादगी सुंदर हो सकती है, गरीबी सुंदर नहीं है। संयम सुंदर है, मजबूरी सुंदर नहीं है। भारत माता की असली जय तब होगी, जब हिंदुस्तान का हर गरीब, औरत और मर्द एक बुनियादी स्तर, एक बुनियादी ह्यूमिनिटी हासिल कर सके। वही है भारत माता की जय। नेहरू की ये बातें गांधी जी के उस मशहूर वक्तव्य से जाकर जुड़ती हैं कि जब भी तुम्हारे मन में कोई नैतिक उलझन हो कि क्या सही है या क्या गलत है, तो जो भी सबसे कमजोर आदमी तुम्हें याद आए, उसका चेहरा याद करो और यह सोचो कि तुम्हारे इस काम से उसका फायदा होगा या नुकसान होगा। भारत माता की जय उस अंतिम आदमी या औरत की जय है। स्वाधीनता आंदोलन के लिए भारत माता का मतलब यह था।

यह बात ध्यान में रखने की है कि जवाहरलाल नेहरू पॉपुलर माइथोलॉजी के विरुद्ध और कंस्ट्रक्टेड माइथोलॉजी के विरुद्ध भारतीय परंपरा, भारतीय सोच और भारतीय इमैजिनेशन के प्रति कोई अवज्ञा का भाव नहीं रखते। भारत माता के रूप में यह कल्पना तो बहुत पुरानी नहीं है। पृथ्वी मां है, मैं पुत्र हूं यह बात बहुत पहले से मिलती है। जननी जन्मभूमि मिलती है, लेकिन भारत नाम का भूखंड माता है, यह कल्पना बाद की है। भारत नाम के भूखंड की अपनी स्पष्ट पहचान है। ये कल्पना, ये बोध कम-से-कम ईसवी-सन के आरंभ होने तक स्पष्ट हो चुका था। विष्णु पुराण साफ तौर से हिमालय के दक्षिण और समुद्र के उत्तर वाले हिस्से को भारत और वहां निवास करने वालों को भारतीय कहता है। एक अहसास कि एक विशिष्ट भूखंड है, जिसका नाम भारत है, वह यह है। उसकी कल्पना माता के रूप में करना, उस कल्पना को इस बात से जोड़ना कि हिंदुस्तान का गरीब से गरीब आदमी असल में भारत माता का प्रतीक है या भारत माता का असली रूप है, ये मॉडर्न नेशन बिल्डिंग, मॉडर्न नेशनलिज्म की सोच से जुड़ी हुई चीज है। यह सवाल हमें पूछना चाहिए कि हमारा नेशन का कॉन्सेप्ट क्या है, राष्ट्र का कांसेप्ट क्या है, राष्ट्र का मतलब क्या है।

इस समय आइडिया ऑफ इंडिया को, आइडिया ऑफ नेशन को रीडिजाइन करने की एक प्रक्रिया चल रही है। हिंदुत्व की, हिंदू परंपराओं की, हिंदू भावनाओं की उपेक्षा की गई, मुसलमानों का तुष्टीकरण किया गया आदि बातें कही जा रही हैं। इस सबको ठीक करने का समय अब आ गया है। इसलिए कुछ लोग इस प्रक्रिया को रीडिजाइन कर रहे हैं। इस प्रक्रिया में प्रधानमंत्री भी लगे हुए हैं। इसलिए अगर आपको थोड़ी-बहुत तकलीफ होती है, तो आप झेल लीजिए। एक एकेडमिक के तौर पर एक सोचने-विचारने वाले व्यक्ति के तौर पर, यहां यह सवाल पैदा होता है कि हू इज भारत माता? केवल एकेडमिक क्वैरी, केवल पॉलिटिकल क्वैरी तक न रह करके यह एक तरह की फिलॉसॉफिकल क्वैरी बन जाती है। जिस यूनिटी इन डाइवर्सिटी में कंपोजिट कल्चर की बात की जाती है, क्या वह केवल एक नारा था? किसी तरह हिंदू-मुसलमान की एकता कायम कर अंग्रेजों को हटा देने का, जो किसी हद तक सफल हुआ? किसी हद तक असफल भी हुआ, क्योंकि अंततः सांप्रदायिक आधार पर विभाजन हुआ। सांप्रदायिक राजनीति भारत के विभाजन के साथ खत्म हो गई, वैसा भी नहीं हुआ। तो क्या यह केवल एक नारा था?

इस बात को अच्छी तरह याद रखा जाना चाहिए कि भारत एक सामासिक संस्कृति पर आधारित राष्ट्र है। क्या बगैर भारतीयता के भी हमारी कोई साझा सांस्कृतिक पूंजी है या हम एकता की बातें केवल हवा में करते हैं? क्या इसीलिए वे बातें धराशायी हो जाती हैं, वे चल नहीं पातीं? जब हम साझा सांस्कृतिक विरासत की बात करते हैं, तो बात केवल हिंदू-मुसलमान के संदर्भ में नहीं है। हमारे जो हिंदुत्ववादी मित्र हैं, वे भारतीय संविधान की जो हस्तलिखित प्रति है, उसमें इस बात को बार-बार रेखांकित करते हैं कि उसमें राम कथा से संबंधित चित्र हैं। वे ये अंडरलाइन करने के लिए इस बात को इंगित करते हैं कि जो लोग राम मंदिर आंदोलन

के विरुद्ध या जो संघ की राजनीति के विरोधी हैं, वे भारतीय संविधान की आत्मा के भी विरोधी हैं। संविधान की पहली प्रति में रामकथा से संबंधित चित्र हैं लेकिन इसके साथ ही नंदलाल बोस और उनके छात्रों द्वारा बनाई गई उन पेंटिंग्स में सिंधु घाटी के चित्र, गीता का उपदेश, बुद्ध और महावीर हैं, चोल हैं, नटराज की प्रतिमा का चित्र है, अशोक हैं और विक्रमादित्य भी हैं। हिन्दुत्ववादी मित्रों की सूचना के लिए अकबर हैं, टीपू सुल्तान हैं, शिवाजी हैं, गुरु गोविंद सिंह हैं और बाई द वे, सुभाषचंद्र बोस भी हैं। दरअसल, जो इमेजिनेशन ऑफ नेशन है, उसमें राम कथा और अकबर एक दूसरे को एक्सक्लूड नहीं करते, गुरु गोविंद सिंह और टीपू सुल्तान एक दूसरे को एक्सक्लूड नहीं करते।

इस बात को ध्यान में रखा जाना चाहिए कि दुनिया के किसी भी समाज की तरह भारतीय समाज एक ऐतिहासिक समाज है। किसी भी समाज की तरह इस समाज में भी संघर्ष रहे, झगड़े रहे, हिंसा रही। महत्वपूर्ण यह है कि इस समाज में एक मिडिल पाथ की खोज की चेष्टा भी लगातार रही। आप सीधे ऋग्वेद के नारदीय सूक्त से इसे शुरू कर सकते हैं। नारदीय सूक्त को जवाहरलाल जी ने गहरी प्रशंसा और कृतज्ञता के बोध के साथ पूरे का पूरा उद्धृत किया है डिस्कवरी ऑफ इंडिया में। क्या है नारदीय सूक्त का सार–इस ब्रह्मांड के, सृष्टि के रहस्य को कोई नहीं जानता। इसका दार्शनिक इम्प्लीकेशन यह है कि कोई भी नॉलेज सिस्टम हो, व्यक्ति हो, कोई अंतिम ज्ञान को पा लेने का दावा नहीं कर सकता। नेहरू बहुत गहराई से इसका अनुभव करते हैं। डिस्कवरी ऑफ इंडिया का अंत वह इसी बात से करते हैं। ये बात अच्छी तरह समझ लेने की जरूरत है कि वहां उन्होंने राष्ट्र शब्द का प्रयोग किया है कि कोई भी राष्ट्र सत्य पर एकाधिकार का दावा नहीं कर सकता। यह ठेठ इंडियन क्लैसिकल पोजीशन है। अब कहा जा रहा है—न्यू इंडिया। काहे का न्यू इंडिया? इस अर्थ में कि अब तक जो इंडिया था, उसको रिजेक्ट करके हम एक नए इंडिया का कांसेप्ट बनाएंगे। इसलिए ये न्यू इंडिया है। इस अवधारणा को हमें क्यों मान लेना चाहिए कि न्यू इंडिया ही सही है? क्या यह बुनियादी सवाल है?

1928 में साइमन कमीशन के विरोध में कांग्रेस ने संविधान के लिए अपनी ओर से मोतीलाल नेहरू की सदारत में नेहरू कमेटी का गठन किया। नेहरू और बोस उसके सदस्य नहीं थे। नेहरू कमेटी के समक्ष सवाल यह था, जो आज फिर जरूरी सवाल हो गया है कि किसी डेमोक्रेसी में कम्युनिटी के आधार पर, कास्ट के आधार पर बनी हुई मेजारिटी या माइनारिटी परमानेंट होगी या पोलिटिकल च्वाइस के आधार पर बनी मेजारिटी या माइनारिटी बदलती रहेगी। जब हम मेजारिटी कहते हैं, तो इसका मतलब यह कि इस मुल्क में हिंदू मेजारिटी हैं क्योंकि उनकी तादाद ज्यादा है। ये कम्युनल मेजारिटी है, रिलीजियस मेजारिटी है, ये पोलिटिकल मेजारिटी भी है। क्या सारे के सारे हिंदू किसी एक पोलिटिकल पार्टी के साथ हैं या उन्हें होना चाहिए? नेहरू कमेटी के सामने यह सवाल था कि अगर हम सचमुच हिंदुस्तान को एक डेमोक्रेटिक सोसाइटी बनाना चाहते हैं, एक प्रोग्रेसिव नेशन बनाना चाहते हैं, तो हमें चेंजिंग मेजारिटीज को स्थापित करना होगा। इसलिए ये जो फिक्स रिप्रजेंटेशन है, ये नहीं चलेगा।

आज जो लोग हिंदुत्व की राजनीति करते हैं, मुसलिम हितों की राजनीति करते हैं, वे घुमा-फिराकर इसी रिलीजियस या सोशल मेजारिटी को फिक्स्ड मेजारिटी में बदल देना चाहते हैं। इसीलिए इसका विरोध होता है और हो रहा है। जिसे इंटिग्रेटेड नेशनलिज्म कहा जा रहा है, वह बुनियादी तौर पर इंडिविजुअलिटी की अवधारणा पर आधारित है। इंडिविजुअलटी की धारणा डेमोक्रेसी का आधार है।

नेहरू के व्यक्तित्व को रेखांकित करने वाली मेरी पुस्तक 'हू इज भारत माता' पर पिछले साल बेंगलुरु लिटरेचर फेस्ट में चर्चा हुई थी। चर्चा में प्रसिद्ध इतिहासकार रामचंद्र गुहा ने कहा था कि नेहरू का अनोखापन इसमें था कि वे उत्तर भारतीय थे, हिंदी भाषी थे लेकिन तमिल भाषी की चिंता समझते थे। ब्राह्मण थे और दलित की चिंता समझते थे। पुरुष थे और भारतीय समाज में स्त्री की स्थिति समझते थे।

नेहरू जी से वर्तमान सत्ता जिस तरह भयभीत रहती है, उस पर मैंने एक नारा गढ़ा है—*नेहरू का भूत, सबसे मजबूत*। इसलिए कि नेहरू का आइडिया ऑफ इंडिया सही मायनों में इंक्लूसिव, डेमोक्रेटाइजिंग है। भारतीय इतिहास की वास्तविकताओं पर आधारित है। मैं कहता हूं कि इंडिया इज होपलेसली डाइवर्स्ड। इंडिया की डाइवर्सिटी को जो डिनाई करेगा, वह इंडिया के इगजिस्टेंस को डिनाई करेगा। इसलिए इन्हें नेहरू से चिढ़ है क्योंकि नेहरू भारत की डाइवर्सिटी को गहराई से समझते थे और इसीलिए इतना दुष्प्रचार है नेहरू की तथाकथित अभारतीयता और तथाकथित अहिंदूपन का। नेहरू की भारतीयता उनके स्वभाव में है। हिंदू धर्म की गहरी समझ नेहरू के स्वभाव में है। उन्हें दिखाने, जताने की जरूरत नहीं पड़ती। वह सहज है। इसीलिए इन्हें नेहरू से डर है।

पाकिस्तान में जब दस साल के भीतर-भीतर डेमोक्रेसी खत्म हो गई और जनरल अयूब सत्ता में आ गए, तो पाकिस्तान के इंटेलेक्चुअल्स ने यह महसूस किया और लोगों ने लिखा कि *द डिफरेंस बिट्वीन इंडिया एंड पाकिस्तान वाज एंड इज जवाहरलाल* नेहरू। बिना नेहरू के कैसे भारत की कल्पना की जा सकती है? यह न भूलें कि नेहरू इस लिहाज से बहुत रेयर व्यक्ति थे कि ऐपरेंटली जो लोग बहुत कंजर्वेटिव और बहुत आर्थोडाग्स थे और जो नेहरू के जीवनकाल में उन्हें कोसते ही रहते थे, वे भी नेहरू के निधन पर बिलख-बिलखकर रोए थे। नेहरू ने 1929 के लाहौर अधिवेशन में कहा था कि हिंदुस्तान में बड़े बुनियादी परिवर्तन आएंगे लेकिन वे आएंगे इन एकार्डेंस विथ इंडियन जीनियस। मैं यह नहीं मानता कि नेहरू को केवल कोसना मिला। आज भी कितने ही लोग नेहरू को मिस करते हैं। ये न भूलें कि सारा प्रपंच ही इसीलिए है कि आप मानें या न मानें, समझें या न समझें, नेहरू को कोसने वाले उनका महत्व समझते हैं। ❑

अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार दिवस पर दो प्रस्ताव

जमशेदपुर सिविल सोसाइटी के तत्वावधान में अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार दिवस पर सेमिनार आयोजित किया गया। सेमिनार लोयोला स्कूल के सभागार मे आयोजित हुआ। दमनकारी कानून और मानवाधिकार के विविध विषयों पर वक्ताओं ने वक्तव्य प्रस्तुत किए। अंत में सर्वसम्मति से दो प्रस्ताव पारित किए गए। **-सं.**

जनविरोधी कानूनों को रद्द करे सरकार

उदारीकरण के दौर में कृषि के प्रति सरकारों का रवैया हमेशा सौतेला और संदिग्ध रहा है. इसके पीछे दो उद्देश्य रहे हैं, सभी कल्याणकारी योजनाओं को एक एक कर खत्म कर देना तथा कृषि व्यवस्था को पूरी तरह बाजार और उसके नियंता पूंजीपतियों के अधीन कर देना. पिछले दिनों इस मंशा के खिलाफ देशव्यापी आंदोलन के फलस्वरूप किसानों ने भूमि अधिग्रहण कानून 2013 पारित करवाया था. ध्यान देने की बात यह है कि मोदी सरकार इस कानून में भी सेंधमारी की कोशिश करती रही, लेकिन सफल नहीं हो पायी. उदारीकरण के दौर की नीतियों और वर्तमान सरकार की साजिशाना हरकतों ने किसानों और सभी जनतांत्रिक शक्तियों के मन में उसके खिलाफ अविश्वास की गहरी भावना पैदा कर दी है.

इन तीनों कानूनों के अस्तित्व में आने के बाद से ही इनके खिलाफ किसान आंदोलन की शुरुआत होने लगी थी, जिसके केंद्र पंजाब और हरियाणा जैसे कृषि प्रधान राज्य बने थे. पंजाब के किसानों का रेल रोको आंदोलन इस बीच चर्चा में तो आ गया लेकिन केंद्र सरकार पर उसका कोई असर नहीं दिखा. उल्टे, वह यह प्रचार करने में व्यस्त रही कि सिर्फ पंजाब के किसान विपक्ष की राजनीति से प्रेरित होकर आंदोलन कर रहे हैं. दूसरी सच्चाई यह है कि सरकार हर साल न्यूनतम समर्थन मूल्य तो घोषित करती है, लेकिन उसका लाभ मुख्यतः पंजाब और हरियाणा के किसान ही उठा पाते हैं. इसलिए उनका पहले आंदोलन में उतरना लाजिमी है. दूसरी बात यह कि पिछड़े राज्यों में किसानों का बड़ा हिस्सा सरप्लस अनाज पैदा भी नहीं करता. झारखण्ड में तो कुछ इलाकों को छोड़कर यहां के किसान अनाज बेच ही नहीं पाते, इसलिए न्यूनतम समर्थन मूल्य के प्रति उदासीन रहते हैं. यहां के गरीब जनवितरण प्रणाली के अनाज पर निर्भर रहते हैं. इन कानूनों का दूरगामी प्रभाव इस व्यवस्था को खतरे में डाल देगा, इस आशंका को नकारा नहीं जा सकता.

इसी पृष्ठभूमि में इस आंदोलन को और इसके प्रति सरकार के रुख को समझा जा सकता है. पंजाब और हरियाणा के किसान संगठनों ने 26 नवंबर (संविधान दिवस) पर दिल्ली पहुंचने के लिए अपना अभियान शुरू किया था. हरियाणा की भाजपा सरकार और केंद्र सरकार की दिल्ली पुलिस ने गोली चलाने के अलावा किसान मार्च पर दमन के सारे हथकंडे अपना लिये. अब तक चोट और पानी की बौछार की ठंड तथा आत्महत्या से कई किसानों की मौत भी हो चुकी है. इसके बावजूद अपने लौह इरादे के साथ किसान दिल्ली बॉर्डर पर डटे हैं. फलस्वरूप देश की राजधानी पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश और उत्तराखंड के किसानों से घिरी हुई है. 8 दिसम्बर 2020 के सफल बंद ने तो साबित कर दिया कि इनके संघर्ष को देशव्यापी जनसमर्थन हासिल है. इस शक्ति प्रदर्शन के साथ आंदोलनकारी किसान इन कानूनों को रद्द करने की अपनी मांग पर अडिग हैं. दूसरी ओर सरकार इनमें संशोधन के लिए तो तैयार है, लेकिन रद्द न करने की जिद्द पर अड़ी है.

यह सच है कि यह आंदोलन लगभग 40 किसान संगठनों के नेतृत्व में चल रहा है. लेकिन उनका मांगपत्र कृषि क्षेत्र और उस पर निर्भर समस्त लोगों के हित साध रहा है. पीडीएस व्यवस्था को जारी रखने की मांग इसका ज्वलंत उदाहरण है. इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए मानवाधिकार दिवस पर आयोजित यह संगोष्ठी इस किसान आंदोलन का समर्थन करती है, सरकार के दमनकारी कदमों की निंदा करती है और मांग करती है कि वह अपने तीनों जनविरोधी कानूनों को रद्द करे.

दमनकारी कानून किसानों के विरोध में

राज्यसत्ता और जनतांत्रिक अधिकारों के बीच अन्तर्विरोध अमूमन हर जगह, हर समय देखने को मिलता है । स्वतंत्र भारत में भी जब मौलिक अधिकारों और स्वतंत्रताओं को जगह मिली थी, जनविरोधी दमनकारी कानून वजूद और अमल में थे। जब भी बड़े जनांदोलन उभरे, उन्हें दबाने के लिए पुराने दमनकारी कानूनों का अनुचित अंधाधुध इस्तेमाल हुआ, नये ज्यादा अन्यायपूर्ण कानून बनाये गये ।

इन दिनों केन्द्र सरकार और उनके पदचिन्हों पर चलने वाली प्रांतीय भाजपाई सरकारें नागरिकों को अधिकारविहीन, आतंकित और प्रताड़ित करने में जुटी हुई हैं। इसके खिलाफ मुखर इंसाफ की निडर शख्सियतों को आतंकी, उग्रवादी, देशविरोधी और षडयंत्रकारी बताकर उन पर झूठे, मनगढ़ंत आरोप मढ़कर सालों साल बिना सुनवाई या बेहद धीमी सुनवाई के दौरान जेलबन्द किया जा रहा है। राजद्रोह कानून, राष्ट्रीय सुरक्षा कानून और इनसे भी ज्यादा यूएपीए कानून का दुरुपयोग इस दमन अभियान के लिए हो रहा है। यूएपीए में तो ऐसे संशोधन किये गये हैं, जो न्याय की सर्वमान्य प्रक्रियाओं का भी उल्लंघन करते हैं। बिना चार्जशीट के भी किसी को अनिश्चित काल तक कैद रखने को कानूनी बनाया जा रहा है। एनआईए इस फासीवादी दमन की मशीनरी के रूप में काम कर रही है। न्यायालय तथा जेल प्रशासन एन आई ए की मंशा के आगे झुके दिख रहे हैं। इसे मंजूर नहीं किया जा सकता। नागरिक को सरकार का गुलाम नहीं बनने दिया जा सकता। लोकतंत्र को हर कीमत पर बचाना है।

हम सब लोकतंत्र के प्रति संकल्पबद्ध नागरिक के रूप में माँग करते हैं कि राजद्रोह कानून, एनएसए, यूएपीए कानून रद्द किया जाय। इनके तहत कैद सारे बेगुनाह, बेचार्जशीट लोगों को रिहा किया जाय। दमनकारी, षडयंत्रपूर्ण, अतिकेन्द्रित एनआईए पर न्यायिक अंकुश लगाया जाय या इसे खत्म किया जाय।

-कवीन्द्र

अच्छे नहीं हैं ये दाग

❑ जगदीप एस छोकर

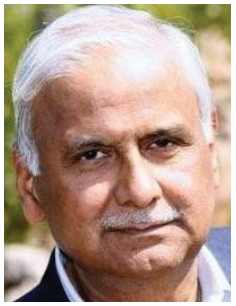

केन्द्र सरकार द्वारा सुप्रीम कोर्ट में हाल ही में दागी नेताओं पर आजीवन प्रतिबंध लगाये जाने के प्रस्ताव का विरोध करने से साफ है कि राजनीतिक दल दागियों को टिकट देना बंद नहीं करेंगे, न ही वे ऐसा कोई कानून बनने देंगे। ऐसे में, सुप्रीम कोर्ट को ही आगे आना होगा।

वर्षों से मांग की जाती रही है कि दागी नेताओं के राजनीति में प्रवेश पर प्रतिबंध लगाया जाना चाहिए। पर केन्द्र सरकार ने हाल ही में सुप्रीम कोर्ट में आपराधिक छवि या अपराधों के लिए दोषी ठहराये जा चुके नेताओं के संसद या विधानसभा चुनाव लड़ने, राजनीतिक पार्टी में बने रहने पर आजीवन प्रतिबंध लगाये जाने की मांग का विरोध किया है। इससे फिर यह स्पष्ट होता है कि कोई सरकार वास्तव में चुनाव सुधार नहीं चाहती। छोटे-मोटे सुधारों की अनुमति सरकारें दे देती हैं, पर कोई महत्त्वपूर्ण सुधार करने के पक्ष में वे नहीं होतीं, क्योंकि किसी राजनीतिक पार्टी की इसमें दिलचस्पी नहीं है। बिहार विधानसभा चुनाव में बहुत से आपराधिक छवि के लोगों का चुनकर आना भी यही बताता है।

करीब बीस साल से एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स (एडीआर) चुनाव सुधार की मांग कर रहा है। वर्ष 1999 में एडीआर ने जब दिल्ली हाईकोर्ट में जनहित याचिका दायर की थी कि उम्मीदवारों को अपने ऊपर चल रहे आपराधिक मामलों के बारे में शपथपत्र में बताना चाहिए, तो उसका केन्द्र सरकार ने खूब विरोध किया था। जब हाईकोर्ट ने याचिका के पक्ष में फैसला दिया, तो इसके खिलाफ सरकार ने सुप्रीम कोर्ट से अपील की थी। सरकार की अपील के पक्ष में तब लगभग सारी राजनीतिक पार्टियां एकजुट हो गयी थीं। फिर भी सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि राजनीति के अपराधीकरण को रोकने के लिए इसे लागू करना चाहिए। फिर 22 दलों ने सर्वदलीय बैठक में सर्वसम्मति से फैसला लिया कि सुप्रीम कोर्ट के इस फैसले को लागू नहीं होने दिया जायेगा। सरकार ने जनप्रतिनिधित्व कानून में संशोधन के लिए एक विधेयक तैयार किया, ताकि सुप्रीम कोर्ट का फैसला लागू न हो सके। पर वह संशोधन विधेयक संसद में पेश करने से पहले संसद भंग हो गयी।

उसके बाद सरकार ने उस विधेयक को अध्यादेश की शक्ल में राष्ट्रपति को भेजा, जिसे राष्ट्रपति ने वापस कर दिया। सरकार ने उस अध्यादेश को फिर भेजा, नतीजतन राष्ट्रपति को उस पर हस्ताक्षर करने पड़े। इस तरह जनप्रतिनिधित्व कानून में संशोधन हो गया और सुप्रीम कोर्ट का फैसला रद्द हो गया। एडीआर ने फिर यह कहते हुए सर्वोच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया कि जनप्रतिनिधित्व कानून में जो संशोधन किया गया है, वह असांविधानिक है। इस पर सुनवाई के बाद मार्च 2013 में सुप्रीम कोर्ट ने जनप्रतिनिधित्व कानून में संशोधन को निरस्त कर दिया और कहा कि इस संबंध में सुप्रीम कोर्ट ने पहले जो फैसला दिया था, वही अस्तित्व में रहेगा। उसके बाद उम्मीदवारों द्वारा आपराधिक मामलों से संबंधित शपथपत्र प्रस्तुत किये जाने लगे। यानी सरकारों और राजनीतिक दलों का पारदर्शिता में कोई विश्वास नहीं है। वर्ष 2003 से एडीआर उम्मीदवारों द्वारा पेश शपथपत्र में उल्लिखित आपराधिक मामलों की सूचना प्रकाशित करने लगा। 2004 में लोकसभा के 25 फीसदी सदस्य ऐसे थे, जिनके खिलाफ आपराधिक मामले चल रहे थे। 2009 में ऐसे सदस्यों की संख्या बढ़कर 30 फीसदी और 2014 में 36 फीसदी हो गयी। मौजूदा लोकसभा में करीब 43 फीसदी सांसद आपराधिक छवि के हैं। चुनाव दर चुनाव दागी सांसदों की बढ़ती संख्या चिन्ता का विषय है।

दागी नेताओं को टिकट देने के संबंध में राजनीतिक दल दलील देते हैं कि जनता ही इन्हें वोट देकर जिताती है। लेकिन एडीआर का मानना है कि अगर राजनीतिक दल ऐसे दागी नेताओं को टिकट न दें, तो मतदाता द्वारा इन्हें वोट देने का सवाल ही नहीं होगा। दूसरी बात एडीआर दागी या संवेदनशील निर्वाचन क्षेत्रों का भी विश्लेषण करता है। दागी या संवेदनशील निर्वाचन क्षेत्र वैसे क्षेत्र को माना जाता है, जहां तीन या तीन से ज्यादा उम्मीदवारों के खिलाफ आपराधिक मामले दर्ज होते हैं, क्योंकि किसी भी निर्वाचन क्षेत्र में आम तौर पर तीन उम्मीदवारों के ही चुनाव जीतने की संभावना होती है। ऐसे में अगर तीनों के खिलाफ आपराधिक मामले दर्ज हैं, तो मतदाताओं के पास क्या विकल्प बचता है। दागी या संवेदनशील निर्वाचन क्षेत्रों की संख्या भी अब बढ़ती जा रही है। पिछले लोकसभा चुनाव में ऐसे क्षेत्रों की संख्या 45 फीसदी थी और अभी संपन्न हुए बिहार चुनाव में ऐसे क्षेत्रों की संख्या 89 फीसदी थी।

चुनाव आयोग ने भी कहा है कि जिस व्यक्ति के खिलाफ चुनाव की घोषणा से कम से कम छह महीने पहले आपराधिक मामले दर्ज हों, और अदालत ने चार्ज फ्रेम कर दिये हों तो उन्हें चुनाव लड़ने की अनुमति नहीं मिलनी चाहिए। कोर्ट में कई बार यह मामला उठा है, पर अदालत कहती है कि कानून बनाना या बदलना तो विधायिका का काम है। यह मामला एडीआर के शपथपत्र वाली याचिका में भी उठा था, जिसमें एडीआर के वकील ने तर्क दिया था कि कानून में अगर कोई कमी है और उसे दूर करने या खामी को पाटने का संसद को समय नहीं मिला या किसी कारणवश वह ऐसा नहीं कर पायी, तथा इससे लोकहित का नुकसान होता है, तो न्यायपालिका को यह अधिकार है और यह उसका कर्तव्य भी है कि वह कानून में जो भी कमी है, उसे दूर करे। पर शीर्ष अदालत इस पर राजी नहीं है और बात यहीं अटकी हुई है।

आपराधिक छवि के नेताओं के खिलाफ वोटरों को नोटा का विकल्प दिया गया है, लेकिन वह प्रभावी नहीं है। सुप्रीम कोर्ट ने कहा था कि अगर ज्यादा से ज्यादा लोग नोटा को चुनेंगे, तो पार्टियां अच्छे लोगों को टिकट देने के लिए मजबूर होंगी। उसके लिए होना यह चाहिए कि अगर किसी चुनाव में सबसे ज्यादा वोट नोटा को मिले, तो वहां से किसी प्रत्याक्षी को निर्वाचित घोषित नहीं करना चाहिए। पर अभी जो कानून है, उसके मुताबिक अगर किसी क्षेत्र में 2000 वोटर हैं, जिनमें से 1999 ने नोटा को वोट दिया और एक वोटर ने किसी उम्मीदवार को, तो एक वोट पाने वाला उम्मीदवार जीत जायेगा। फिर पार्टियां ही प्रचार करती हैं कि नोटा को चुनना वोट खराब करना है। साफ है कि राजनीतिक दल दागियों को टिकट देना बंद नहीं करेंगे, न ही वे ऐसा कोई कानून बनने देंगे। ऐसे में, राजनीति के अपराधीकरण को रोकने के लिए सुप्रीम कोर्ट को ही आगे आना होगा। ❑

हमारी बहस के केन्द्र में यदि गांधी नहीं है, तो सब कुछ ठीक नहीं है

आज देश का किसान सड़क पर जूझ रहा है। सीमावर्ती प्रदेशों में हो रही बर्फबारी और भीषण ठंड को धता बताते हुए पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश आदि से दिल्ली की सीमाओं पर आकर जुटे किसानों का जुनून और आग्रह निर्णायक मुद्रा में है। सरकार बातचीत का केवल दिखावा कर रही है और उसकी निष्ठा कुछ कॉरपोरेट घरानों के हाथ बिक चुकी है। किसान यह बात समझ रहा है कि सरकार दोहरी भूमिका में है। एक तरफ वह कारपोरेट के हितों के लिए कटिबद्ध है तो दूसरी ओर उसके मंत्रियों की फौज आंदोलन में फूट डालने, ताकत को कमजोर करने और किसान संगठनों पर आरोप लगाकर उन्हें बदनाम करने के काम में लगी हुई है। सरकारी पक्ष के हाथों अपनी निष्ठा बेच चुका लोकतंत्र का तथाकथित चौथा खम्भा, गोदी मीडिया सरकार की आलोचना तो फिर भी सुन ले रहा है, किन्तु कारपोरेट के खिलाफ वह कुछ भी सुनने को तैयार नहीं है। किसान आंदोलन को बदनाम करने के अभियान में वह भी अपनी पूरी ताकत के साथ कारपोरेट हितों के साथ खड़ा है। ऐसे वक्त में हम गांधीजनों की जिम्मेदारी है कि गांधी को बहस के केन्द्र में रखें। अगर गांधी इस राष्ट्रीय विमर्श के केन्द्र में नहीं लाये जा सके तो सबकुछ ठीक है का दावा धरा का धरा रह जायेगा।

ये बातें गत 13 दिसंबर 2020 को सर्व सेवा संघ परिसर, राजघाट, वाराणसी में आयोजित एक परिचर्चा में देश के विभिन्न हिस्सों से आये सामाजिक कार्यकर्ताओं और वक्ताओं ने कही। सर्व सेवा संघ (अखिल भारत सर्वोदय मंडल) के नवनिर्वाचित अध्यक्ष चंदन पाल और उनकी टीम के वाराणसी दौरे के अवसर पर वाराणसी की सामाजिक संस्थाओं और कार्यकर्ताओं की तरफ से उनके स्वागत के लिए आयोजित इस कार्यक्रम को दो सत्रों में विभाजित किया गया था। प्रथम सत्र में नवागत अध्यक्ष के साथ संस्थाओं और कार्यकर्ताओं के परिचय का कार्यक्रम था। इस सत्र में अध्यक्ष चंदन पाल के साथ मंत्री गौरांग महापात्र, प्रबंधक ट्रस्टी अशोक कुमार शरण, महाराष्ट्र से आये रमेश दाने तथा सर्व सेवा संघ के पूर्व अध्यक्ष डॉ. सुगन बरंठ के अलावा रामधीरज, रवीन्द्र भाई, रामखेलावन, लालबहादुर राय, ओमप्रकाश अरुण, भारत भूषण, सुश्री शुभा प्रेम, ईश्वरचंद, राममूरत, रामनारायण, अरविन्द कुशवाहा, प्रदीप शुक्ला, विनय कुमार राय, हरीराम वर्मा तथा एसडीएम सदर मदनमोहन वर्मा आदि साथी शामिल हुए।

आयोजन के दूसरे सत्र में संगठन की चर्चा के अतिरिक्त किसान आंदोलन में संगठन की सहभागिता के मुद्दे पर विशद चर्चा हुई। इस सत्र में अपने विचार रखने वालों में प्रमुख रूप से डॉ. सुनील सहस्त्रबुद्धे, महेश विक्रम, अफलातून देसाई, रामजनम, चंचल, संजीव सिंह, मुहम्मद शरीफ, सौरभ, रवीन्द्र दुबे, जावेद अब्दुल्ला, नीता चौबे, पुतुल, रामदयाल शर्मा, विजय नारायण, नीति भाई तथा मो. शाहिद अंसारी आदि शामिल थे। दोनों सत्रों का समापन सर्व सेवा संघ के अध्यक्ष चंदन पाल के अध्यक्षीय उद्‌बोधन से हुआ। उन्होंने उपस्थित साथियों के स्वागत भाव से अभिभूत होते हुए सबका सहयोग मांगा और कहा कि सर्व सेवा संघ की नींव गांधी-विचार निष्ठा पर आधारित है। जिस संगठन का नेतृत्व सिद्धराज ढड्ढा, प्रो. ठाकुरदास बंग, आचार्य राममूर्ति और नारायण देसाई जैसी विभूतियों ने किया, उस संगठन का नेतृत्व संभालने का दायित्व बड़ा दायित्व है। आप सभी का सहयोग और मार्गदर्शन मिलेगा तो हम भी इस दायित्व का सफलतापूर्वक निर्वहन कर पायेंगे।

किसानों के सवाल पर उन्होंने उपस्थित कार्यकर्ताओं का आवाहन करते हुए कहा कि यह समय बैठने का नहीं है। हमें देश के अन्नदाता के साथ अपनी शक्ति जोड़नी होगी। मिलजुल कर एक वृहद कार्यक्रम तय करें और किसान आंदोलन के साथ अपनी नैतिक, भौतिक और सांगठनिक शक्ति लगायें। देश का किसान ही यदि सुखी नहीं रहेगा तो देश तरक्की नहीं कर सकता है और न ही लोकतंत्र की रक्षा हो सकती है।

दोनों सत्रों में भाग लेने आये सभी अभ्यागतों की उपस्थिति और उनकी सहभागिता के लिए सभी के प्रति धन्यवाद प्रकाश रामधीरज ने किया। बापू के व्यक्तित्व और विचार को समर्पित बच्चों के एक समूह गान के साथ कार्यक्रम का समापन हुआ।

-सज प्रतिनिधि

देश भर के गांधीजनों का एक दिन का उपवास

देशव्यापी किसान आंदोलन के समर्थन में विभिन्न प्रान्तों में गांधीवादी विचारधारा के अनुयायियों ने एक दिन का उपवास रखा और सरकार की नीतियों का विरोध किया. सर्व सेवा संघ के अध्यक्ष चंदन पाल एवं श्रीमती अनुलेख व वरिष्ठ गांधीजन रमेश पंकज, सर्व सेवा संघ प्रकाशन के संयोजक अरविंद अंजुम, आश्रम प्रतिष्ठान, सेवाग्राम के अध्यक्ष टीआरएन प्रभु, सर्व सेवा संघ के मैनेजिंग ट्रस्टी अशोक शरण, वनवासी सेवा आश्रम की मंत्री शुभा प्रेम, सेवाग्राम कार्यालय संयोजक अविनाश काकड़े, सर्व सेवा संघ के शेख हुसैन, केरल सर्वोदय मंडल के एस जगदीशन, उत्कल सर्वोदय मंडल के सचिव शिवम किसान आंदोलन के समर्थन मे उपवास पर बैठने वालों में शामिल थे। डा. शिवचरणसिह ठाकुर, प्रसिद्ध समाजसेवी व चिकित्सक डॉ विभा, मुंबई में जयंत दिवाण, बजरंग सोनवणे, दीप्ति लकुम, विवेक जैन, विशाल गवली, सोनू कापड़िया, सूफी खान,नासिब शेख़, रमेश दाणे समेत महाराष्ट्र के अनेक कार्यकर्ताओं एवं महाराष्ट्र सर्वोदय मंडल से जुड़े साथियों ने उपवास में शामिल होकर किसानों के साथ अपनी एकजुटता जाहिर की.

-गौरांग महापात्र

किसान आंदोलन के समर्थन में जमशेदपुर के नागरिकों की एकजुटता

विभिन्न सामाजिक व राजनैतिक समूहों एवं विचारों से जुड़े नागरिकों ने 5 दिसंबर 2020 को जमशेदपुर में एक साथ बैठकर मौजूदा किसान आंदोलन पर चर्चा की और किसान आंदोलन के साथ अपनी पूरी एकजुटता जाहिर की। किसान आंदोलन के साथ केन्द्र सरकार के जनतंत्र विरोधी एवं दमनकारी बरताव की भी निन्दा की तथा सरकार से तीनों किसान विरोधी कानूनों को तत्काल वापस लेने की माँग की।

एक साझा बयान में कहा गया है कि तीनों कृषि विषयक कानून देश के तमाम किसानों के हित और अस्तित्व के खिलाफ हैं। भले ही यह आंदोलन अभी सरप्लस या बिक्री लायक उत्पादन करने वाले अंचलों में उमड़ा है, कालान्तर में सारे गाँवों और खेतों में यह आंदोलन फैलेगा। ठेका खेती का कानून न केवल कृषि क्षेत्र में कॉरपोरेट के प्रवेश का मार्ग प्रशस्त करेगा, बल्कि अंततः छोटे किसानों के हाथ से खेतों का स्वामित्व और नियंत्रण भी छीन लेगा। बिना देर किये सभी गरीब जनों को भी इस आंदोलन के समर्थन में उतरना चाहिए। हर न्यायप्रिय नागरिक को बोलना होगा। श्रमिक संगठन, ट्रांसपोर्टर और अन्य समूह किसान आंदोलन के साथ आ रहे हैं, यह सकारात्मक एवं स्वागतयोग्य है। **-अरविन्द अंजुम**

भारत बन्द के समर्थन में नेता उतरे सड़क पर

किसान आंदोलन के समर्थन में भारत बन्द के आह्वान पर विभिन्न राजनीतिक दलों के नेताओं और सामाजिक कार्यकर्ताओं ने वाराणसी में सड़क पर उतर कर किसानों की मांगों के प्रति अपनी एकजुटता का प्रदर्शन करते हुए गिरफ्तारी दी। इनमें प्रमुख रूप से पूर्व एमएलसी अरविंद सिंह, मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के प्रांतीय सचिव डॉ. हीरालाल यादव, समाजवादी नेता कुंवर सुरेश सिंह, राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी के प्रांतीय सचिव राकेश पाठक, गांधीवादी सामाजिक कार्यकर्ता डॉ. मो. आरिफ, बैंक कर्मी यूनियन के नेता शिवनाथ यादव, माकपा के जिला सचिव नंदलाल पटेल समेत कई लोग शामिल रहे। गिरफ्तारी के बाद ये सभी लोग कोतवाली में भी जमकर नारे लगाते रहे। नेताओं ने कहा कि लाठी गोली और जेल के जरिये किसानों की जायज मांगो को दबाया नहीं जा सकता। पूरा देश अन्नदाता के साथ मजबूती से खड़ा है। **-मो. आरिफ**

किसानों को भी मिले दैनिक भत्ता

कृषि कानून के विरोध में चल रहे आंदोलन का समर्थन करते हुए बिहार सर्वोदय मंडल के महामंत्री चंद्रभूषण ने शहीद किसानों को नमन करते हुए कहा कि किसानों का आंदोलन बिल्कुल जायज है, सरकार को किसानों के हित को ध्यान में रखते हुए तीनों कृषि कानून वापस लेना चाहिए।

उन्होंने कहा कि आजादी के बाद से ही सभी सरकारों ने किसानों की अनदेखी किया है, इसका स्पष्ट प्रमाण है कि 1970 में गेहूं की कीमत 76/- प्रति क्विंटल थी, जो 45 सालों के बाद 2015 में 1450/- प्रति क्विंटल हुई। केवल 19 गुना की वृद्धि हुई। दूसरी तरफ सरकारी कर्मचारियों की केवल वेतन के मद में 150 गुना, टीचर की 300 गुना और प्रोफेसर की 170 गुना की वृद्धि हुई। अगर किसानों के गेहूं की कीमत में 100 गुना की भी वृद्धि होती तो आज गेहूं की कीमत 7600/- प्रति क्विंटल होती। सरकार की आर्थिक नीति किसानों के खिलाफ एवं कॉरपोरेट के समर्थन में है। एक सर्वे के अनुसार राज्य और केन्द्र सरकार अगर सातवां वेतन सुधार लागू करेंगे तो करीब 480000 करोड़ रुपये खर्च होगा, लेकिन किसानों को 2 लाख करोड़ रुपये भी देने की बात हो तो यह कहा जाता है कि रुपया कहां से आयेगा, हाहाकार मच जाता है।

सुप्रीम कोर्ट के पदाधिकारियों को 21 हजार रुपये प्रति साल कपड़ा धोने के लिए मिलता है। इसी तरह सेना के पदाधिकारियों को भी मिलता है। इसके अलावा हाउस रेंट, एजूकेशन आदि कई तरह की सुविधा दी जाती है। किसानों को इस तरह की सुविधा क्यों नहीं दी जाती? क्या उनके बच्चे नहीं पढ़ते? आज सरकार किसानों को बोझ समझती है, इनकी नीति है कि कृषि को समाप्त कर ज्यादा से ज्यादा लोगों को शहर में बुलाकर मजदूर बनाओ और पूंजीपतियों को सस्ता श्रमिक उपलब्ध कराओ। **-चंद्रभूषण**

खादी ग्रामोद्योग व स्वदेशी पर परिचर्चा

गांधी स्टडी सर्कल, जोधपुर द्वारा 13 दिसंबर को ई माध्यम से 'खादी ग्रामोद्योग व स्वदेशी' विषयक परिचर्चा का आयोजन किया गया। कार्यक्रम का प्रारंभ सर्व धर्म प्रार्थना, नाम माला से किया गया, तत्पश्चात वरिष्ठ सर्वोदयी दिवंगत शशि त्यागी व भवानी शंकर कुसुम को दो मिनट मौन रखकर श्रद्धांजलि अर्पित की गयी। डॉ. संतोष छापर ने कहा कि कोरोना महामारी के कारण हमारी अर्थव्यवस्था व हमारा जीवन तंत्र बुरी तरह प्रभावित हुआ है और बेकारी बढ़ी है। इसके त्वरित समाधान हेतु हमें हमारे स्वदेशी उत्पादों को प्राथमिकता से उपयोग में लाना होगा। गांधी शांति प्रतिष्ठान के आजीवन सदस्य अशोक चौधरी ने खादी ग्रामोद्योग पर प्रकाश डालते हुए अर्थव्यवस्था के सशक्तिकरण हेतु माइक्रो मैनेजमेंट पर बात करते हुए कहा कि क्षेत्र विशेष की स्थिति के अनुसार वहां उत्पादित गुणवत्ता युक्त वस्तुएं हमारे दैनिक उपभोग में आना प्रारम्भ होंगी, इससे स्थानीय स्तर पर न केवल पूंजी का प्रवाह बढ़ेगा, बल्कि रोजगार के असंख्य अवसर पैदा होंगे। हमारा यह छोटा-सा कदम बहुत प्रभावशाली सिद्ध होगा। संवाद के दौरान प्रतिभागियों ने ब्रांडेड की अपेक्षा स्वदेशी की गुणवत्ता सहित अन्य पहलुओं पर अपने विचार व्यक्त किये। कार्यक्रम में सर्वोदय मित्र भंवराराम, रुद्राक्ष, महेंद्र, बुद्धि पटेल सहित पर्यावरण स्वाध्याय मंडल, भारतीय लोक शिक्षण मंच के कार्यकर्ताओं की भागीदारी रहीं।

-भावेश चंद्र जैन

'Sarvodaya Jagat' Hindi Fortnightly
Registered under RNI No. 35495/78, Postal Registration No. VSI-(E) 04, Valid upto 31 December 2020
Issued by S.S.P.O. Varanasi (East Division)

तीन कविताएं

उनका दूसरा ही लोक है!

❑ मैथिली शरण गुप्त

हेमन्त में बहुधा घनों से पूर्ण रहता व्योम है,
पावस निशाओं में तथा हँसता शरद का सोम है।

हो जाय अच्छी भी फसल,
पर लाभ कृषकों को कहाँ?
खाते, खवाई, बीज ऋण से हैं रंगे रक्खे जहाँ।

आता महाजन के यहाँ वह अन्न सारा अंत में,
अधपेट खाकर फिर उन्हें है काँपना हेमंत में।

बरसा रहा है रवि अनल,
भूतल तवा-सा जल रहा,
है चल रहा सन सन पवन,
तन से पसीना बह रहा।

देखो कृषक शोषित,
सुखाकर हल तथापि चला रहे,
किस लोभ से इस आँच में,
वे निज शरीर जला रहे!

घनघोर वर्षा हो रही, है गगन गर्जन कर रहा,
घर से निकलने को गरज कर, वज्र वर्जन कर रहा।

तो भी कृषक मैदान में करते निरंतर काम हैं,
किस लोभ से वे आज भी, लेते नहीं विश्राम हैं!

बाहर निकलना मौत है, आधी अँधेरी रात है,
है शीत कैसा पड़ रहा, औ' थरथराता गात है!

तो भी कृषक ईंधन जलाकर, खेत पर हैं जागते,
यह लाभ कैसा है,
न जिसका मोह अब भी त्यागते!

सम्प्रति कहाँ क्या हो रहा है,
कुछ न उनको ज्ञान है,
है वायु कैसी चल रही,
इसका न कुछ भी ध्यान है!

मानो भुवन से भिन्न,
उनका दूसरा ही लोक है,
शशि, सूर्य हैं फिर भी कहीं,
उनमें नहीं आलोक है!

किसान

❑ गौहर रज़ा

तुम किसानों को सड़कों पे ले आए हो।
अब ये सैलाब हैं
और सैलाब तिनकों से रुकते नहीं।
ये जो सड़कों पे हैं,
ख़ुदकशी का चलन छोड़ कर आए हैं।
बेड़ियां पावों की तोड़ कर आए हैं।
सोंधी ख़ुशबू की सब ने क़सम खाई है
और खेतों से वादा किया है कि अब
जीत होगी तभी लौट कर आएंगे।
अब जो आ ही गए हैं तो यह भी सुनो,
झूठे वादों से ये टलने वाले नहीं।
तुम से पहले भी जाबिर कई आए थे,
तुम से पहले भी शातिर कई आए थे,
तुम से पहले भी ताजिर कई आए थे,
तुम से पहले भी रहज़न कई आए थे,
जिन की कोशिश रही कि
सारे खेतों का कुंदन, बिना दाम के
अपने आकाओं के नाम गिरवी रखें।
उन की किस्मत में भी हार ही हार थी
और तुम्हारा मुक़द्दर भी बस हार है।
तुम जो गद्दी पे बैठे, ख़ुदा बन गए,
तुम ने सोचा कि तुम आज भगवान हो,
तुम को किस ने दिया था ये हक़?
ख़ून से सब की किस्मत लिखो
और लिखते रहो?
गर जमीं पर ख़ुदा है, कहीं भी कोई
तो वो दहक़ान है,
है वही देवता, वो ही भगवान है।
और वही देवता,
अपने खेतों के मंदिर की दहलीज़ को
छोड़ कर आज सड़कों पे है।
सर-ब-कफ़, अपने हाथों में परचम लिए
सारी तहज़ीब-ए-इंसान का वारिस है, जो
आज सड़कों पे है।
हाकिमों! जान लो! तानाशाहों सुनो!
अपनी किस्मत लिखेगा वो सड़कों पे अब।
काले क़ानून का जो कफ़न लाए हो,
धज्जियाँ उस की बिखरी हैं चारों तरफ़।
इन्हीं टुकड़ों को रंग कर धनक रंग में,
आने वाले जमाने का इतिहास भी
शाहराहों पे ही अब लिखा जाएगा।
तुम किसानों को सड़कों पे ले आए हो,
अब ये सैलाब हैं
और सैलाब तिनकों से रुकते नहीं।

संकट बढ़ रहा है!

❑ राजेश जोशी

संकट बढ़ रहा है!
छोटे-छोटे खेत अब नहीं दिखेंगे इस धरती पर,
कॉर्पोरेट आ रहे हैं!
कॉर्पोरेट आ रहे हैं!
सौंप दो उन्हें अपनी छोटी-छोटी जमीनें,
मर्जी से नहीं, जबर्दस्ती छीन लेंगे वे!
कॉर्पोरेट आ रहे हैं!
जमीनें सौंप देने के सिवा
कोई और विकल्प नहीं,
तुम्हारे पास!

नहीं – नहीं,
यह तो गलत वाक्य बोल गया मैं।
विकल्प ही विकल्प है तुम्हारे पास;
मसलन भाग सकते हो शहरों की ओर,
जहाँ न तुम किसान रहोगे, न मजदूर।
घरेलू नौकर बन सकते हो वहां,
जैसे महान राजधानी में
झारखंड के इलाकों से आई
लड़कियां कर रही हैं झाड़ू-बासन के काम।
अपराध जगत के दरवाजों पर नो वैकेंसी का
कोई बोर्ड कभी नहीं रहा।
अब भी लामबंद न होना चाहो,
लड़ना न चाहो अब भी,
तो एक सबसे बड़ा विकल्प खुला है
आत्महत्या का!
कि तुमसे पहले भी चुना है
यह विकल्प तुम्हारे भाई-बन्दों ने
लेकिन इतना जान लो....
मृत्यु सिर्फ मर गए आदमी के दुःख और
तकलीफें दूर करती है,
लेकिन बचे हुओं की तकलीफों में हो जाता है
थोड़ा इजाफा और....! ❑

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) के लिए प्रकाशक अरविन्द अंजुम द्वारा सर्व सेवा संघ परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001 से प्रकाशित तथा महावीर प्रेस, भेलूपुर, वाराणसी से मुद्रित। संपादक : बिमल कुमार